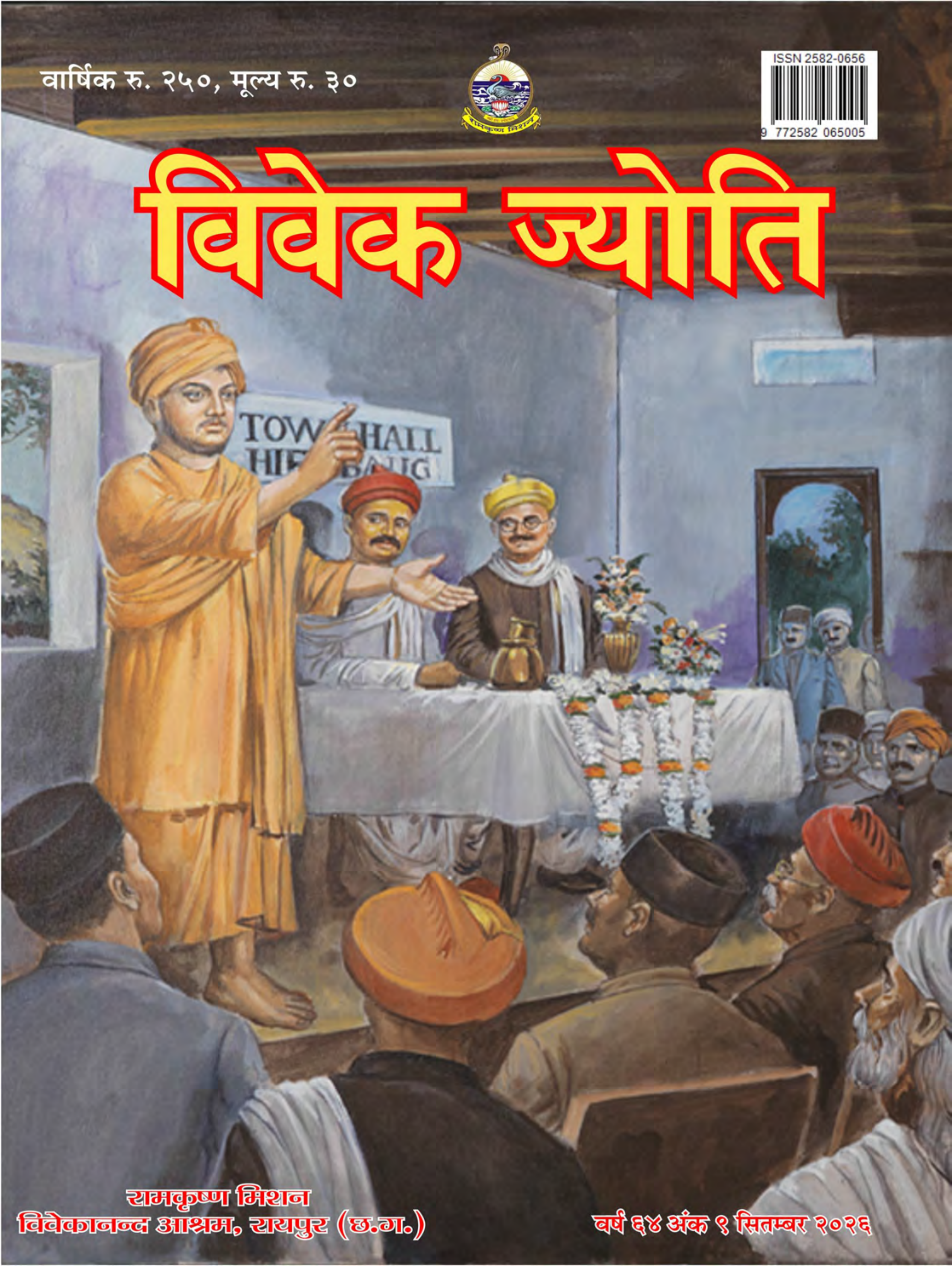

वार्षिक रु. २५०, मूल्य रु. ३०

ISSN 2582-0656

विवेक ज्योति

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छ.ग.)

वर्ष ६४ अंक ९ सितम्बर २०२६

* आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च *

वर्ष ६४
अंक ९

विवेक-ज्योति

हिन्दी मासिक

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी योगस्थानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी पद्माक्षानन्द

भाद्र, सम्वत् २०८३

सितम्बर, २०२६

अनुक्रमणिका

* सर्वस्व समर्पण करने से ईश्वर-प्राप्ति बहुत जल्दी होती है : रामकृष्ण परमहंस देव ३९०
* श्रीकृष्णजन्माष्टमी महोत्सव की विशेषता (आचार्य धर्मानन्द जोशी) ३९३
* रासलीला का तात्त्विक विवेचन (पं. श्री अखिलेश शास्त्री जी) ३९९
* (बच्चों का आंगन) प्रतिभाशाली नरेन (श्रीमती गीतांजलि मुरारी) ४०७
* (युवा प्रांगण) बुद्धिमतां वरिष्ठम् (स्वामी गुणदानन्द) ४११
* व्रज में श्रीमाँ सारदा (स्वामी ओजोमयानन्द) ४१५
* अद्भुत हँसी, जो सबको हँसाती (श्रीमती मिताली सिंह) ४२०

* (भजन एवं कविता) विस्मित है यह प्रश्न अभी तक (डॉ. अर्जुन गुप्ता 'गुंजन') ४०८, * जय जय गणपति (आनन्द तिवारी 'पौराणिक') श्रीकृष्ण पंचक स्तोत्रम् (डॉ. अनिल कुमार) जन्म के लिए मरण भी जरूरी है (पं. गिरिमोहन गुरु), * राधा दृग् में गई समाय (श्रीधर द्विवेदी) ४१०, * विवेकानन्द-वन्दन (आचार्य भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश') ४१३, चरण कमल नयनन उर लाई (स्वामी मैथिलीशरण) ४१९, * त्रिमूर्ति वन्दना (रामकुमार गौड़) ४२१, * कृष्ण मेरे परम प्रियवर (डॉ. ओमप्रकाश वर्मा) ४२४

शृंखलाएँ

मंगलाचरण (स्तोत्र) ३८९
पुरखों की थाती ३८९
सम्पादकीय ३९१
रामगीता ३९६
श्रीरामकृष्ण-गीता ४०९
गीतातत्त्व-चिन्तन ४२२
साधुओं के पावन प्रसंग ४२५
समाचार और सूचनाएँ ४३०

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५ (फोन करने का समय केवल सुबह १० से १२)
ई-मेल : **vivekjyotirkmraipur@gmail.com,** वेबसाइट : ***www.rkmraipur.org***
आश्रम कार्यालय : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९ (समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

ISSN 2582-0656

विवेक-ज्योति के सदस्य कैसे बनें

भारत में	वार्षिक	५ वर्षों के लिए
एक प्रति ३०/-	२५०/-	१२५०/-
विदेशो में (हवाई डाक से)	७० यू.एस. डॉलर	३५० यू.एस. डॉलर
संस्थाओं के लिए	४००/-	२०००/-

भारत में रजिस्टर्ड पार्सल का शुल्क प्रति अंक अतिरिक्त ४५/- देय होगा ।

* सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक या साधारण मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – **'रामकृष्ण मिशन'** (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाकर रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम रायपुर (छ.ग.) ४९२००१ के नाम स्पीड पोस्ट से भेज दें अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कराएं :

बैंक का नाम : सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया
अकाउण्ट का नाम : रामकृष्ण मिशन, रायपुर
शाखा का नाम : विवेकानन्द आश्रम, रायपुर, छ.ग.
अकाउण्ट नम्बर : 1385116124
IFSC : CBIN0280804

सदस्यता के नियम

(१) 'विवेक-ज्योति' पत्रिका के सदस्य किसी भी माह से बनाए जाते हैं। सदस्यता-शुल्क की राशि यथासम्भव स्पीड-पोस्ट मनीआर्डर से भेजें या बैंक-ड्राफ्ट – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएं। यह राशि भेजते समय एक अलग पत्र में अपना पिनकोड सहित पूरा पता और टेलीफोन नम्बर आदि की पूरी जानकारी भी स्पष्ट रूप से लिख भेजें।

(२) पत्रिका को निरन्तर चालू रखने हेतु अपनी सदस्यता की अवधि पूरी होने के पूर्व ही नवीनीकरण करा लें।

(३) **विवेक ज्योति कार्यालय से प्रतिमाह सभी सदस्यों को एक साथ पत्रिका प्रेषित की जाती है। डाक की अनियमितता के कारण कई बार पत्रिका नहीं मिलती है। अतः पत्रिका प्राप्त न होने पर अपने समीप के डाक-विभाग से सम्पर्क एवं शिकायत करें। इससे अनेक सदस्यों को पत्रिका मिलने लगी है।** पत्रिका न मिलने की शिकायत माह पूरा होने पर ही करें। **अंक उपलब्ध रहने पर ही पुनः प्रेषित किया जाएगा।**

(४) सदस्यता, एजेंसी, विज्ञापन या अन्य विषयों की जानकारी के लिए 'व्यवस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय' को लिखें।

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

आवरण पृष्ठ पर पूना के डेक्कन क्लब में स्वामी विवेकानन्द व्याख्यान दे रहे हैं, उनके साथ लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक भी मंचस्थ हैं, इसको दर्शाया गया है।

सितम्बर माह के जयन्ती और त्यौहार

०४	श्रीकृष्ण जन्माष्टमी
१०	स्वामी अद्वैतानन्द
७, २२	एकादशी

विवेक-ज्योति कोष/स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री रामराज प्रसाद और श्रीमती उषा प्रसाद की स्मृति में श्री अनुराग प्रसाद, कौशाम्बी, गाजियाबाद, उ.प्र.	९,६०१/-

'vivek jyoti hindi monthly magazine' के नाम से अब विवेक-ज्योति पत्रिका यू-ट्यूब चैनल पर सुनें

विवेक-ज्योति के अंक ऑनलाइन निःशुल्क पढ़ें : www.rkmraipur.org

रामकृष्ण मिशन आश्रम, पटना
(रामकृष्ण मिशन, बेलूड़ मठ, हावड़ा, पं.बं. की एक शाखा)
रामकृष्ण एवेन्यु (नाला रोड), पटना - ८०० ००४
मो.+व्हाट्सएप नं. – 917320040847 , ईमेल : patna@rkmm.org

श्रीरामकृष्ण-मन्दिर के सभा-मण्डप के पुनर्निर्माण हेतु विनम्र निवेदन

प्रिय भक्तगण एवं शुभचिन्तक वृन्द !

नमस्कार !

रामकृष्ण मिशन आश्रम, पटना की स्थापना मूल रूप से १९२२ में पूज्य स्वामी ज्ञानेश्वरानन्द जी महाराज द्वारा की गई थी तथा १९२६ में इसे बेलूड़ मठ, हावड़ा स्थित रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन की सम्बद्ध शाखा के रूप में मान्यता प्राप्त हुई। एक शताब्दी से भी अधिक समय से यह आश्रम श्रीरामकृष्ण देव, श्रीमाँ सारदा देवी तथा स्वामी विवेकानन्द के आदर्शों से प्रेरित होकर मानव सेवा में समर्पित है। स्वामीजी के अमर आदर्श – '**आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च**' (अपने मोक्ष तथा विश्व के कल्याण के लिए) से प्रेरित होकर आश्रम निरन्तर समाज के आध्यात्मिक उत्थान एवं कल्याण हेतु विशेषकर शिक्षा, स्वास्थ्य-सेवा तथा आदर्शोन्मुखी आध्यात्मिक गतिविधियों के क्षेत्र में कार्य करता रहा है। विगत दशकों में आश्रम ने निम्नलिखित सेवाओं के माध्यम से समाज के उत्थान में अमूल्य योगदान दिया है – * छात्रावास *सारदा नेत्रालय एवं बाह्य रोगी विभाग सेवाएँ *मोतियाबिन्द तथा अन्य नेत्र शल्य-चिकित्साएँ *दन्त चिकित्सा एवं सामान्य चिकित्सा सुविधाएँ *स्थानीय विद्यार्थियों के लिए पुस्तकालय सुविधा *आध्यात्मिक प्रवचन एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम।

आश्रम के शताब्दी वर्ष (२०२६-२७) के आगमन के अवसर पर, वर्तमान मन्दिर परिसर एवं सभा-मण्डप, जिसने दशकों तक असंख्य भक्तों की सेवा की है, पुराने एवं संरचनात्मक दृष्टि से अपर्याप्त हो गए हैं। निम्न भूमि स्तर, कमजोर जल निकासी व्यवस्था तथा मुख्य सड़क की तुलना में सभा-मण्डप का अपेक्षाकृत निम्न स्तर पुनर्निर्माण की आवश्यकता को और अधिक बढ़ाता है। आध्यात्मिक गतिविधियों को सुरक्षित एवं गरिमापूर्ण वातावरण में नियमित रूप से जारी रखने हेतु आश्रम के सभा-मण्डप के पुनर्निर्माण का कार्य प्रारम्भ किया गया है। इस विकास योजना के अन्तर्गत वर्तमान गर्भगृह मन्दिर का भी पुनर्निर्माण प्रगति पर है।

परियोजना का विवरण :	**अनुमानित व्यय**
सिविल निर्माण कार्य	रु. ६.६० करोड़
लाल बलुआ पत्थर नक्काशी कार्य	रु. ५.४० करोड़
विद्युत एवं अन्य विविध कार्य	रु. ३.०० करोड़
कुल अनुमानित व्यय	**रु. १५.०० करोड़**

हम सभी श्रद्धालुओं, प्रशंसकों एवं उदार हृदय शुभचिन्तकों से इस पवित्र परियोजना में अपनी यथाशक्ति सहायता प्रदान करने की हार्दिक अपील करते हैं। आपकी श्रद्धा-भक्ति से अर्पित सहायता इस महान कार्य को पूर्ण करने तथा इस पवित्र आध्यात्मिक केन्द्र को भावी पीढ़ियों के लिये सुरक्षित रखने में सहायक होगी।

दान सम्बन्धी विवरण : NEFT/RTGS बैंक ICICI BANK, IFSCode : ICIC0006349 खाता संख्या : 634901711719

चेक/डिमांड ड्राफ्ट कृपया 'रामकृष्ण आश्रम पटना' के नाम से बनाएँ। आयकर अधिनियम की धारा ८०-जी के अन्तर्गत सभी दान आयकर मुक्त हैं। दान करने के बाद कृपया निम्न माध्यमों से हमें सूचित करने का कष्ट करें – WhatsApp : +917320040847, ईमेल : patna@rkmm.org

कृपया निम्न विवरण अवश्य भेजें – नाम एवं मोबाइल नम्बर, पूर्ण डाक पता, पैन नं. और भुगतान सम्बन्धी विवरण।

श्रीरामकृष्ण देव, श्रीमाँ सारदा देवी तथा स्वामी विवेकानन्द की कृपा एवं आशीर्वाद आपके तथा आपके परिवार पर सदैव बना रहे, इसी प्रार्थना के साथ।

सादर,
स्वामी सर्वविद्यानन्द

सुदर्शन सोलार...
ऊर्जा अपरंपार !
आधुनिक भारत की बिजली की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हमारे पास पर्याप्त मात्रा में सौर ऊर्जा उपलब्ध है। प्राकृतिक रुप से उपलब्ध इस स्त्रोत का प्रतिदिन की अपनी आवश्यकताओं के लिये उपयोग करके, अपने बिजली के बिल में भारी पैमाने पर कटौती कर, हम अपने देश को बिजली के निर्माण में आत्मनिर्भर बनाने में सहायता कर सकते हैं।
इस सुन्दर भूमि को सदा हरी-भरी रखने के लिये अपना साथी
भारत का विश्वसनीय सौर ऊर्जा ब्रांड - 'सुदर्शन सौर'!
Sudarshan Saur
सोलर वॉटर हीटर
24 घंटे गरम पानी के लिए
सोलर लाइटिंग्स
ग्रामीण क्षेत्र में घरेलू उपयोग के लिए
सोलार इलेक्ट्रिसिटी सिस्टम
रुफटॉप सोलार
बिजली उत्पन्न करने के लिए
घर, बंगलोज, हॉस्पिटल्स, हॉटेल्स, इंडस्ट्रीज, कमर्शिअल कॉम्प्लेक्स, इन्स्टिट्यूट्स के लिए उपयुक्त
समझदारी की सोच!
३० साल का प्रदीर्घ अनुभव!
आजीवन सेवा
लाखां संतुष्ट ग्राहक
विस्तृत डीलर नेटवर्क
Sudarshan Saur®
www.sudarshansaur.com
Toll Free
1800 233 4545
E-mail: office@sudarshansaur.com

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ६४ सितम्बर २०२६ अंक ९

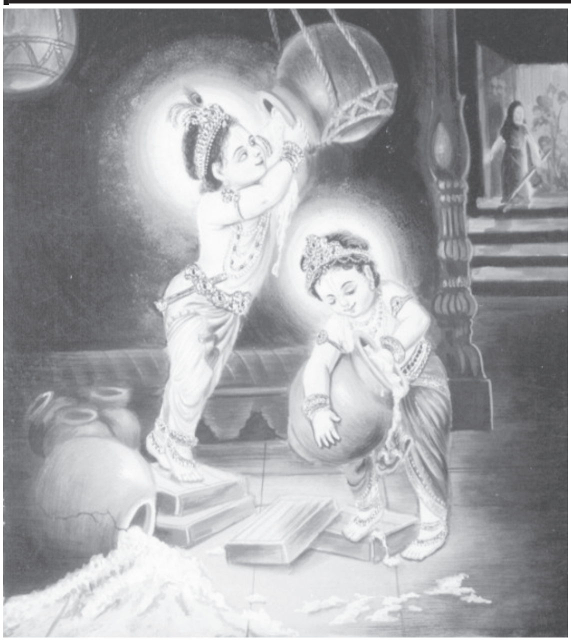

श्रीकृष्ण-स्तुतिः

विना यस्य ध्यानं व्रजति पशुतां सूकरमुखां
विना यस्य ज्ञानं जनिमृतिभयं याति जनता ।
विना यस्य स्मृत्या कृमिशतजनिं याति स विभुः
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षिविषयः ।।

– जिनके ध्यान के बिना जीव शूकरादि पशु-योनियों में भटकता रहता है, जिनके ज्ञान के बिना जनता जन्म-मरण के भय को प्राप्त होती है, जिनके स्मरण के बिना जीव सैकड़ों कीट-योनियों में गिरता है, वे सर्वशक्तिमान, शरण्य लोकेश्वर श्रीकृष्ण मेरे नेत्रों के विषय हों।

पुरखों की थाती

गन्धेन हीनं सुमनं न शोभते
दन्तैर्विहीनं वदनं न भाति ।
सत्येन हीनं वचनं न दीप्यते
पुण्येन हीनः पुरुषो जघन्यः ।।९११।।

– सुगन्ध से रहित पुष्प शोभित नहीं होता, दाँतों के बिना मुख-मण्डल शोभित नहीं होता, सत्य के बिना वाणी में तेज नहीं आता और पुण्य-कर्म न करने वाला व्यक्ति जघन्य होता है।

हस्तस्य भूषणं दानं
सत्यं कण्ठस्य भूषणम् ।
कर्णस्य भूषणं शास्त्रं
भूषणैः किं प्रयोजनम् ।।९१२।।

– दान हाथ का आभूषण है, सत्य कण्ठ का आभूषण है और शास्त्र-श्रवण कानों का आभूषण है, इनके अतिरिक्त अन्य आभूषणों की क्या आवश्यकता?

कल्याणमस्तु सर्वेषां विलसन्तु समृद्धयः ।
सुखाः समीरणा वान्तु भान्तु सर्वा दिशः शुभाः ।।९१३।।

– सभी लोगों का कल्याण हो, सर्वत्र समृद्धि का विस्तार हो, बहने वाली वायु सुखमय हो और समस्त दिशाएँ मंगलमय हों।

सर्वस्व समर्पण करने से ईश्वर-प्राप्ति बहुत शीघ्र होती है : रामकृष्ण परमहंस देव

जो सरल भक्ति-विश्वास के साथ प्रभु के चरणों में सर्वस्व समर्पण कर देता है, उसे बहुत शीघ्र ईश्वर-प्राप्ति होती है।

संसार में रहना या संसार का त्याग करना भगवान की ही इच्छा पर निर्भर है। इसलिए उन्हीं पर सब कुछ सौंपकर अपना कर्तव्य किए जाओ। इसके सिवा तुम कर ही क्या सकते हो?

मैदान में जमा हुआ पानी किसी के द्वारा उपयोग न करने पर अपने आप धूप से सूख जाता है। पापी मनुष्य भी यदि ईश्वर के ऊपर निर्भर होकर पड़ा रहे, तो उनकी दया से अपने आप पवित्र हो जाता है।

प्रश्न – संसार में हमें किस प्रकार रहना चाहिए?

उत्तर – सब कुछ भगवान को समर्पित कर दो, स्वयं को भी समर्पित कर दो। ऐसा करने पर फिर कोई व्यथा नहीं रह जाएगी। तब तुम देख पाओगे कि सब कुछ उन्हीं की इच्छा से हो रहा है।

ईश्वर को ब-कलमा दे देना, मैं-पन बिल्कुल न रखते हुए ईश्वर की ही इच्छा पर अपना सब कुछ सौंप देना। इससे बढ़कर सरल और सीधा रास्ता और नहीं है।

बन्दर का बच्चा अपनी माँ को कसकर पकड़े हुए उससे लिपटा रहता है, परन्तु बिल्ली का बच्चा पड़े-पड़े केवल 'म्याऊँ-म्याऊँ' किया करता है, बिल्ली स्वयं ही उसे मुँह में पकड़कर उठा ले जाती है। बन्दर का बच्चा अगर हाथ छोड़ दे, तो नीचे गिर पड़ेगा, क्योंकि उसने स्वयं अपनी माँ को पकड़ रखा है। परन्तु बिल्ली के बच्चे को गिरने का भय नहीं है, क्योंकि उसे उसकी माँ ने पकड़ रखा है। पुरुषार्थ और ईश्वरनिर्भरता में यही अन्तर है।

एक आदमी अपने एक बच्चे को गोद में लिए और दूसरे बच्चे को अपना हाथ पकड़ाकर खेत की मेड़ पर से चला जा रहा था। चलते-चलते आसमान में एक चील को उड़ते देख दूसरा बच्चा, जो अपने पिता का हाथ पकड़कर चल रहा था, मारे खुशी के पिता का हाथ छोड़कर ताली पीटते हुए 'पिताजी, देखो कैसी चिड़िया है' कहते हुए चिल्ला उठा। पर हाथ छोड़ते ही वह ठोकर खाकर गिर पड़ा। जो बच्चा पिता की गोद में था, वह भी खुश होकर तालियाँ बजा रहा था, पर वह नहीं गिरा, क्योंकि पिता ने उसे पकड़ रखा था। इसमें से पहला बच्चा पुरुषार्थ का उदाहरण है और दूसरा ईश्वरनिर्भरता का।

श्रीमती राधिका को एक बार अपने सतीत्व की परीक्षा देनी पड़ी। उन्हें एक हजार छेद वाले घड़े में पानी भरकर लाने कहा गया। जब वे वह सहस्त्रधारा कलश भरकर चलने लगीं, तो उसमें से एक बूँद भी पानी नहीं गिरा। यह देख सभी लोग उनकी प्रशंसा करते हुए कहने लगे कि ऐसी सती दूसरी नहीं होगी। इस पर श्रीमती ने कहा, ''तुम लोग मेरा जयघोष क्यों करते हो? कहो, 'श्रीकृष्ण की जय हो, श्रीकृष्ण की जय हो।' मैं तो उनकी एक दासी मात्र हूँ।'

ईश्वरनिर्भरता कैसी होती है? जैसी कठोर परिश्रम करने के बाद तकिए से टेककर बैठे हुए आराम से हुक्का पीना। अर्थात् किसी तरह की चिन्ता नहीं है, जो करना होगा, ईश्वर ही करेंगे, यह भाव।

संसार में आँधी में उड़ने वाली जूठी पत्तल की तरह रहा करो। जूठी पत्तल आँधी के भरोसे निर्भर रहती है, आँधी उसे जहाँ उड़ा ले जाती है, वहीं जाती है, कभी किसी घर के भीतर, तो कभी कूड़े-कचरे में। इसी तरह, प्रभु ने तुम्हें संसार में रख छोड़ा है, तो अभी संसार में रहो; फिर जब वे तुम्हें इससे अच्छी जगह पर ले जाएँगे, तब उनके भरोसे वहीं रहना, उन पर निर्भर होकर निर्लिप्त रूप से पड़े रहना।

सम्पादकीय

नरेन्द्र में सर्वधर्मसमन्वय का बीजारोपण

भगवान श्रीरामकृष्ण के प्रिय शिष्य स्वामी विवेकानन्द ने जब अमेरिका की धरती पर अपने चरण रखे और विभिन्न परिस्थितियों से संघर्ष करते हुए, अपने गुरुदेव श्रीरामकृष्ण परमहंस की कृपा का पल-पल अनुभव करते हुए ११ सितम्बर, १८९३ को विश्वधर्म-सम्मेलन के सभा-मंच पर उपस्थित होकर धर्मों की कट्टरता पर केशरी के सदृश प्रहार किया और सर्वधर्मसमानता की महिमा गायी, तो सारी सभा अवाक् हो गयी। पाश्चात्यवासियों ने पहली बार किसी गैरिकवस्त्रधारी संन्यासी से ऐसी ओजस्वी वाणी में सभी धर्मों के प्रति सम्माननीय शब्दों को सुना था। पहली बार इतनी आत्मीयता के साथ किसी ने धर्मसार को स्पष्ट और सरल शब्दों में हृदयंगम कराया था। पहली बार किसी भारतीय युवा-आचार्य की वाणी हृदय के अन्तरतम में प्रवेश कर आनन्द की उद्दीपना करने लगी और उस आनन्द की अभिव्यक्ति एक साथ कई मिनटों तक करतल-ध्वनि में परिणत हो गयी।

Swami Vivekananda at the World Parliament of Religions, Chicago, 1893

कोई भी धर्म, पन्थ या सम्प्रदाय किसी अन्य धर्म को अपशब्द कहकर, उसे नीचा दिखाकर बड़ा नहीं होता। रक्तरंजित तलवार से धर्म का विस्तार अशान्तिकर और क्षणिक होता है। किसी धर्म की आलोचना कर कोई धर्म बड़ा नहीं होता। जब कि ऐसा करने का प्रयास करने वाला व्यक्ति स्वयं काल के गर्भ में इन सारे अपयशों के साथ समा जाता है। सच्चा धर्म सदा सत्य, शाश्वत और सर्वमंगलकारी होता है।

सभी धर्म, जो ईश्वरावतार महापुरुषों के द्वारा देश-काल-पात्रानुसार प्रवर्तित किए जाते हैं, वे सदा मानव के लिए हितकर, कल्याणकारी और मानव में अन्तर्निहित दिव्यता की अभिव्यक्ति में सहायक होते हैं। एक धर्म किसी दूसरे धर्म का विरोधी नहीं होता है। सच्चा धर्म मनुष्य में प्रेम, सद्भाव और सौहार्द का संचार कर उसे उसकी श्रेष्ठता की उपलब्धि में सहायक होता है, लेकिन कभी भी, किसी भी प्रकार से मनुष्य में वैमनस्य, ईर्ष्या-द्वेष और घृणा-भाव नहीं फैलाता, मानव का अध:पतन नहीं करता, उसका विनाश नहीं करता। यदि धर्म के नाम पर कोई ऐसा करता है, तो वह धर्म नहीं है, अधर्म है।

शिकागो की सभा में सभी धर्मों के धर्मावलम्बियों के बीच में अपने ही धर्म की सर्वश्रेष्ठता सिद्ध करने वालों की लंका में आग लगाते हुए स्वामीजी ने सनातन हिन्दू धर्म की उदारता, महानता और सभी धर्मों की समानता का संदेश देकर पाश्चात्य की आँखें खोल दी थीं।

नरेन्द्र में सर्वधर्मसमन्वय का बीजांकुर और सर्वधर्मसमन्वयक श्रीरामकृष्ण

विश्वधर्म-सम्मेलन, शिकागो के लगभग १० वर्ष पहले २६ सितम्बर, १८८४ की घटना है। श्रीरामकृष्ण देव कलकत्ता गए हुए हैं। नवरात्रि में सप्तमी तिथि की दुर्गापूजा हो रही है। श्रीरामकृष्ण अधर के यहाँ जाकर प्रतिमा-पूजन देखेंगे, आनन्दमयी के आनन्दोत्सव में भाग लेंगे और शिवनाथ शास्त्री से भेंट करेंगे।

श्रीरामकृष्ण शिवनाथ शास्त्री के घर गये। वहाँ उनके साथ हाजरा और एक-दो भक्त थे। मास्टर भी आ गए थे। देखते-देखते कुछ अन्य ब्राह्मभक्त विजय आदि कई लोग पहुँच गए। श्रीरामकृष्ण ने विजय से हँसते हुए कहा – मैंने सुना है कि यहाँ कोई साइनबोर्ड है। दूसरे मतों के आदमी यहाँ नहीं आ पाते। नरेन्द्र ने कहा – समाज में जाने की आवश्यकता नहीं है, आप शिवनाथ के यहाँ जाइएगा।

तब श्रीरामकृष्ण देव ने जो उत्तर दिया, मेरी दृष्टि में उसी दिन नरेन्द्र ने सर्वधर्म-समादर और समन्वय की शिक्षा पाई, उसी दिन कट्टरता का बीजांकुर नष्ट हुआ और उदारता का बीजारोपण हुआ, जो १० वर्षों बाद शिकागो की सभा में विशाल वट-वृक्ष के रूप में सम्पूर्ण विश्व के समक्ष अभिव्यक्त हुआ।

किसी से द्वेष मत करो

नरेन्द्र की बात सुनकर श्रीरामकृष्ण ने पहला शब्द कहा

– ''मैं कहता हूँ, उनको सभी पुकार रहे हैं। द्वेष की क्या आवश्यकता है? कोई साकार कहता है और कोई निराकार। मैं कहता हूँ, जिसका विश्वास साकार पर है, वह साकार का चिन्तन करे। तात्पर्य यह कि कट्टरता की कोई आवश्यकता नहीं है कि मेरा ही धर्म ठीक है तथा अन्य सब गलत हैं। 'मेरा धर्म ठीक है, पर दूसरों के धर्म में सच्चाई है या वह गलत है, यह मेरी समझ में नहीं आता। कबीर कहते थे, साकार मेरी माँ है और निराकार मेरा पिता। 'काको निन्दौं काको बन्दौं, दोनों पल्ला भारी।' ''

''हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, शाक्त, वैष्णव, शैव, ऋषियों के समय के ब्रह्मज्ञानी और आजकल के ब्राह्मसमाज वाले तुम लोग, सब एक ही वस्तु की इच्छा रखते हो, अन्तर इतना ही है कि जिससे जिसकी पाचनशक्ति न बिगड़े, उसी की व्यवस्था उसके लिए माँ ने की है।''

किसी धर्म से द्वेष क्यों न करें?
श्रीरामकृष्ण का समाधान

श्रीरामकृष्ण कहते हैं, देश, काल और पात्र के भेद से ईश्वर ने अनेक धर्मों की सृष्टि की है। परन्तु सभी मत उनके (ईश्वर के) मार्ग हैं, पर मत कभी ईश्वर नहीं है। बात यह है कि आन्तरिक भक्ति के द्वारा एक मत का आश्रय लेने पर उनके पास तक पहुँचा जाता है। अगर किसी मत का आश्रय लेने पर कोई भूल उसमें रहती है, तो आन्तरिकता के रहने पर वे भूल सुधार देते हैं। अगर कोई आन्तरिक भक्ति के साथ जगन्नाथजी के दर्शनों के लिये निकलता है और भूलकर दक्षिण की ओर न जाकर उत्तर की ओर चला जाता है, तो रास्ते में उसे कोई अवश्य ही कह देता है, 'क्यों भाई, उस ओर कहाँ जा रहे हो, दक्षिण की ओर जाओ।' वह व्यक्ति कभी-न-कभी जगन्नाथजी के दर्शन अवश्य ही करेगा।'' (श्रीरामकृष्णवचनामृत अखण्ड, पृ. ६४६)

इस प्रकार श्रीरामकृष्ण देव ने बड़े ही सरल ढंग से सभी धर्मों का एक ही लक्ष्य है, इसे इंगित कर धार्मिक विवाद और कट्टरता से दूर रहने का संदेश दिया। कट्टरता का उन्होंने बड़ी ही कठोरता से निषेध किया और इस सम्बन्ध में एक बड़ी ही सुन्दर कहानी सुनाई – ''केवल कट्टरता अच्छी नहीं होती। तुम लोगों ने बहुरूपिये की कहानी सुनी होगी। एक आदमी ने जंगल में जाकर पेड़ पर एक गिरगिट देखा। उसने मित्रों के पास वापस आकर कहा, मैंने एक लाल गिरगिट देखा। उसका विश्वास है कि वह बिलकुल लाल है। एक दूसरा व्यक्ति उस पेड़ के नीचे से वापस आया और कहा, मैं एक हरा गिरगिट देखकर आ रहा हूँ। परन्तु जो व्यक्ति उस पेड़ के नीचे ही रहता था, उसने आकर कहा, तुम लोग जो कुछ कह रहे हो, सब ठीक है, क्योंकि वह कभी लाल होता है, कभी पीला और कभी उसका कोई रंग नहीं रहता।'' इस प्रकार उस व्यक्ति ने उन दोनों मित्रों के भ्रम को दूर कर दिया, जो यह मानते थे कि उन्होंने जो देखा है, वही केवल सत्य है, शेष गलत है।

कट्टरता, हठधर्मिता, अन्धाधुन्ध अनुकरण, उन्माद और असहिष्णुता – ये परस्पर पर्यायवाची शब्द हैं, किन्तु इनकी अभिव्यक्ति विभिन्न समयों और परिस्थितियों में विभिन्न प्रकार से होती है, लेकिन इसके परिणाम सदा भयावह, विनाशक होते हैं। एक ओर कट्टरता समाज और राष्ट्र के उत्थान में अत्यन्त बाधक और अहितकर है, तो दूसरी ओर यह व्यक्ति के उत्थान और उसकी मानसिक शान्ति के मार्ग में विशाल पर्वत के समान खड़ी रहती है। यह मानव-मन में सुख-शान्ति, आनन्द के बदले उसे विषवत् पीड़ा देती है और अन्त में व्यथा, पीड़ा और अशान्ति में ही वह व्यक्ति मृत्यु के पाश में बँधकर असमय ही कालकवलित हो जाता है। इतनी दुखदायी है यह कट्टरता !

इसीलिये सभी आचार्यों ने कट्टरता की निन्दा की है और उदारता और एकनिष्ठता की प्रशंसा करके उसे मानव-उत्थान में सहायक माना है। एकनिष्ठता क्या है? मेरी दृष्टि में अपनी और दूसरे व्यक्ति की किसी भी प्रकार से कोई क्षति न पहुँचाते हुए अपने विश्वास और आस्था पर अडिग रहना एकनिष्ठता है। ठीक इसके विपरीत भय, त्रास और दण्ड द्वारा किसी भी प्रकार से अपने विचार, मत को दूसरे को स्वीकार करने को विवश करना कट्टरता है।

इसीलिये श्रीरामकृष्ण ने युवक नरेन्द्र में उसी दिन कट्टरता के जन्मे बीज को नष्ट कर दिया और उनमें सभी धर्मों के प्रति सम्मान का बीजारोपण किया, जो शिकागो के विश्व धर्मसम्मेलन में उनके मुख से नि:सृत हुआ था। ○○○

श्रीकृष्णजन्माष्टमी महोत्सव की विशेषता

आचार्य धर्मानन्द जोशी

अधरं मधुरं वदनं मधुरं नयनं मधुरं हसितं मधुरम् ।
हृदयं मधुरं चरितं मधुरं, मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ।।
भाद्रपदमासस्य कृष्णपक्षे, अष्टम्यां शुक्रवासरे ।
अगस्तमासे नवदश दिनांके श्रीकृष्णजन्माष्टमी कृता ज्ञेया।
श्रीकृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने ।
प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः।।

श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी विष्णु के आठवें अवतार भगवान श्रीकृष्ण का जन्मोत्सव है। योगेश्वर कृष्ण के भगवद्‌गीता के उपदेश अनादि काल से जनमानस के लिए जीवन-दर्शन प्रस्तुत करते रहे हैं। जन्माष्टमी को भारत में ही नहीं; बल्कि विदेशों में बसे भारतीय भी पूरी आस्था व उल्लास से मनाते हैं। श्रीकृष्ण ने भाद्र माह की कृष्णपक्ष की अष्टमी को मध्यरात्रि में अत्याचारी कंस का विनाश करने के लिए मथुरा में अवतार लिया। भगवान स्वयं इस दिन पृथ्वी पर अवतरित हुए थे। इसलिये इस दिन को कृष्ण जन्माष्टमी के रूप में मनाते हैं। श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी के अवसर पर मथुरा नगरी भक्ति के रंगों से प्रफुल्लित हो उठती है।

भगवान कृष्ण जन्मोत्सव – भगवान कृष्ण ने ८वें मनु वैवस्वत के मन्वन्तर के द्वापर में भाद्रपद के कृष्ण पक्ष को ८वें मुहूर्त में आधी रात को देवकी के गर्भ से जन्म लिया था। श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के पावन अवसर पर भगवान कान्हा की मोहक छवि देखने के लिए दूर-दूर से श्रद्धालु आज के दिन मथुरा पहुँचते हैं। श्रीकृष्ण जन्मोत्सव पर मथुरा कृष्णमय हो जाती है। मन्दिरों को विशेष रूप से सजाया जाता है। जन्माष्टमी में स्त्री-पुरुष बारह बजे तक व्रत रखते हैं। इस दिन मन्दिरों में झाँकियाँ सजाई जाती हैं, भगवान कृष्ण को झूला झुलाया जाता है और रासलीला का भी आयोजन होता है।

अष्टमी दो प्रकार की है – पहली जन्माष्टमी और दूसरी जयन्ती। ब्रह्मपुराण का कथन है कि द्वापर युग में भ्रादपद मास के कृष्ण पक्ष को अष्टमी में अठाइसवें युग में देवकी के पुत्र श्रीकृष्ण उत्पन्न हुए थे। यदि दिन या रात में कलामात्र भी रोहिणी न हो, तो विशेषकर चन्द्रमा से मिली हुई रात्रि में इस व्रत को करें। भविष्य पुराण में केवल अष्टमी तिथि में ही उपवास करने के लिए कहा गया है। यदि वही तिथि रोहिणी नक्षत्र से युक्त हो, तो 'जयन्ती' नाम से सम्बोधित की जाएगी। वह्निपुराण का वचन है कि कृष्ण पक्ष की जन्माष्टमी में यदि एक कला भी रोहिणी नक्षत्र हो, तो उसको जयन्ती नाम से ही सम्बोधित किया जाएगा। अतः उसमें प्रयत्न से उपवास करना चाहिए। विष्णुपुराण के अनुसार कृष्ण पक्ष की अष्टमी रोहिणी नक्षत्र से युक्त भाद्र पद मास हो, तो वह जयन्ती नाम वाली ही कही जाएगी। विचित्र संयोग है कि सूर्यवंशी श्रीराम का जन्म दिन में १२ बजे और चंद्रवंशी षोडश कलाओं से सुशोभित श्रीकृष्ण जी का जन्म रात के १२ बजे मथुरा के कारागार में हुआ। श्रीकृष्ण का चरित्र सतत चिन्तन का विषय है। कुछ लोगों का मत है कि कृष्ण क्रूर राजनीतिज्ञ थे। गोस्वामी तुलसीदास जी ने लिखा है – राजनीति बिनु धन बिनु धर्मा। (३/२०/८) श्रीकृष्ण का संदेश है –

निश्चेष्ट होकर बैठ रहना यह महा दुष्कर्म है।
न्यायार्थ अपने बन्धु को भी दंड देना धर्म है ।।

वशिष्ठ संहिता का मत है – यदि अष्टमी तथा रोहिणी; इन दोनों का योग अहोरात्र में असम्पूर्ण भी हो, तो मुहूर्त

मात्र में भी अहोरात्र के योग में उपवास करना चाहिए। स्कन्द पुराण का वचन है कि जो उत्तम पुरुष हैं, जो भक्त इस लोक में निश्चित रूप से जन्माष्टमी व्रत को करते हैं, उनके पास सदैव लक्ष्मी स्थिर होती हैं। इस व्रत के करने के प्रभाव से उनके समस्त कार्य सिद्ध होते हैं।

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्,
पीताम्बरादरुणबिम्बफलाधरोष्ठात्।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे,
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।।

योगेश्वर के पावन चरित्र, जन्मदिन को भारत के साथ-साथ विदेशों में भी हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है।

भक्तों ने श्रीकृष्ण को दस तथा चौबीस अवतारों में पूर्णावतार कहा है। श्रीकृष्ण के जीवन में वह सब कुछ है, जिसकी भारत को आवश्यकता होती है। श्रीकृष्ण गुरु हैं, आदर्श शिष्य भी हैं, आदर्श पति हैं, प्रेमी भी हैं, आदर्श मित्र हैं और शत्रु भी हैं। वे आदर्श पुत्र तथा आदर्श पिता भी हैं। युद्ध तथा बुद्धि में भी कुशल हैं। उनके जीवन में हर रंग हैं, जो शस्य-श्यामला धरती पर हैं। इसलिए कहा है जगद्गुरु शंकराचार्य जी ने – भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते। भगवान श्रीकृष्ण के मुख्य नाम अनेक हैं – गोवर्धनधारी, बाँकेबिहारी, कन्हैया, केशव, श्याम, रणछोड़दास, द्वारकाधीश, वासुदेव, मुरलीधर, गिरिधारी, घनश्याम, माखनचोर, मुरारी, देवकीनन्दन और गोपाल इत्यादि। इनके स्वरूप को प्रस्तुत करते कहा गया है – मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्। यहाँ तक कि उनके बालरूप का वर्णन भी इस प्रकार किया गया –

करारविन्देन पदारविन्दं
मुखारविन्देन विनिवेशयन्तम् ।
वटस्य पत्रस्य पुटे शयानम्
बालं मुकुन्दं मनसा स्मरामि ।

श्रीकृष्ण ने अपनी तीनों बहनों से भी अधिक अपनी मानसी बहन द्रौपदी का सम्मान करते हुए हर पल उनकी रक्षा की। श्रीकृष्ण के गुणों की स्तुति 'मधुराष्टकम्' में तन्यमता से की गई है। श्रीकृष्ण ने अहंकारियों का अहंकार दूर किया। भक्तों की हर पल रक्षा की। गीता में भगवान ने 'मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु' वचनों से अर्जुन को समझाकर उनकी रक्षा की। श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा – हम भक्तन के, भक्त हमारे। सुन अर्जुन यह प्रतिज्ञा मोरी, यह व्रत टरत न टारे ।। भक्त के कारण गरुड़ वाहन तजि रथ हाँकत हौं तेरो। ऐसे भगवान हमारे हैं, अत: कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्।

विष्णु पुराण के अनुसार आधी रात के समय रोहिणी में जब कृष्णाष्टमी हो, तो उसमें कृष्ण का अर्चन और पूजन करने से तीन जन्मों के पापों का नाश होता है। भृगु ने कहा है – जन्माष्टमी, रोहिणी और शिवरात्रि; ये पूर्वविद्ध ही करनी चाहिए तथा तिथि एवं नक्षत्र के अन्त में पारण करें। इसमें केवल रोहिणी उपवास भी सिद्ध है।

मोहनाशक कृष्ण-जन्माष्टमी – श्रीकृष्ण जन्माष्टमी की रात्रि को मोहरात्रि कहा गया है। इस रात में योगेश्वर श्रीकृष्ण का ध्यान, नाम अथवा मन्त्र जपने से संसार की मोह-माया से आसक्ति हटती है। जन्माष्टमी का व्रत व्रतराज है। इसके विधि-अनुसार पालन से आप अनेक व्रतों से प्राप्त होने वाली महान पुण्यराशि प्राप्त कर लेंगे। गीता में भी कालरात्रि, महारात्रि, मोहरात्रि का वर्णन है।

ब्रजमण्डल में श्रीकृष्ण-जन्म लेने के उपलक्ष्य में श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी के दूसरे दिन भाद्रपद कृष्ण-नवमी में नन्द महोत्सव अर्थात् 'दधिकांदौ' बड़े हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है। भगवान के श्रीविग्रह पर हल्दी, दही, घी, तेल, गुलाब जल, मक्खन, केसर, कपूर आदि चढ़ाकर व्रजवासी उसका परस्पर लेपन और छिड़काव करते हैं। वाद्ययन्त्रों से मंगल-ध्वनि बजाई जाती है। भक्तजन मिठाई बाँटते हैं। जगद्गुरु श्रीकृष्ण का जन्मोत्सव नि:संदेह सम्पूर्ण विश्व के लिए आनन्द-मंगल का संदेश देता है। श्रीकृष्ण के श्रीमद्भगवद्-गीता का पाठ

करने से भय-शोक से मुक्ति और परम पद मिलता है – विष्णोः पदमवाप्नोति भयशोकाद् विवर्जितः।

जन्माष्टमी पर व्रत क्यों रखते हैं? – जन्माष्टमी भगवान कृष्ण के अवतरण का दिन है। इस दिन भक्त भगवान कृष्ण की विशेष पूजा करते हैं और उपवास भी रखते हैं। कृष्ण के भक्त इस दिन प्रायः फलाहार आदि पर रहकर व्रत करते हैं, लेकिन यदि स्वास्थ्य सम्बन्धी कारणों से एक समय भोजन करना जरूरी हो, तो इसका भी संकल्प ले सकते हैं। इस दिन 'गोपालसहस्रनाम' का पाठ करने से मनोवाञ्छित फल की प्राप्ति होती है। सदियों से भगवान राम की कथा भारतीय संस्कृति में रची-बसी है, लेकिन हर बार यह प्रश्न उठता है कि लोगों में पूजित श्रीराम जी का जन्म कब, कहाँ और कैसे हुआ। ठीक उसी तरह लोग भगवान कृष्ण की जन्म गाथा के बारे में जानना चाहते हैं। आज हम आपके इस प्रश्न का उत्तर देंगे कि कब भगवान राम और भगवान कृष्ण ने जन्म लिया था।

अनेक सन्तों – सूरदासजी, तुलसीदासजी, सन्त-कबीरजी, गाँधीजी आदि श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं का वर्णन कर मन्त्रमुग्ध हो गए। हमारे देश के प्रधानमन्त्री श्री नरेन्द्र मोदी जी विदेशी विशिष्ट अतिथियों को उपहार में श्रीमद्भगवद्गीता सहर्ष अर्पित करते हैं। गीता देश की सर्वोत्तम निधि है, जिसकी न्यायालयों में हिन्दू धर्म-ज्ञाननिधि के रूप में शपथ ली जाती है ।

पुराणों और वेदों की मानें, तो पाँचवीं से चौथी शताब्दी ईसा पूर्व, जिसे सम्भवतः ऋग्वेद का काल कहा जाता है, महर्षि वाल्मीकि ने रामायण की रचना की थी। कई बार इस पर बहस होने के बाद अन्ततः इस बात के सच होने का वैज्ञानिक प्रमाण मिल गया है। भगवान राम पर वैज्ञानिक संस्था 'आई' ने जब शोध की, तो उसे कुछ चौंकाने वाले तथ्य साक्ष्य में मिले। 'आई' संस्था के अनुसार वाल्मीकि रामायण के अनुसार राम का जन्म चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि को पुनर्वसु नक्षत्र और कर्क लग्न में हुआ था। यानी जिस दिन भगवान राम का जन्म हुआ, उस दिन अयोध्या के ऊपर तारों की सारी स्थिति का स्पष्ट उल्लेख है। श्रीकृष्ण के चरणों में अनुरक्त अनेक कवि जैसे व्यास, शुकदेव, चरणदास, मीरा, रसखान, दयाबाई, सूरदास, गुरुनानक यहाँ तक कि मुस्लिम कवयित्री ताज ने भी अपने को श्रीकृष्ण के चरणों में न्यौछावर कर लिखा है –

साँवरा सलौना सिरताज सिर कुल्हेदार।
तेरे नेह दाग में, निदाग ह्वै रहूँगी मैं ।
नन्द के कुमार कुरबान तेरी सूरत पै,
हौं तो मुगलानी, हिन्दुआनी हौं रहूँगी मैं ।।

श्रीकृष्ण भाग्यवादी से अधिक कर्मयोगी थे। श्रीकृष्ण का संदेश कर्म का था। वे अर्जुन को गीता में कहते हैं – **'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन', 'योगः कर्मसु कौशलम्' 'गीता सुगीता कर्तव्या'।** श्रीकृष्ण योगेश्वर जगदीश्वर हैं। अधिक क्या कहें, श्रीकृष्ण जन्माष्टमी भगवान श्रीकृष्ण के पावन और दिव्य चरित्र का स्मरण कराने के लिए प्रतिवर्ष भाद्रकृष्ण अष्टमी को सम्पूर्ण भारत तथा विदेशों में उल्लास और आनन्द के साथ मनाई जाती है। कृष्ण जगद्गुरु हैं – कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्।

गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा कि पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति – अर्थात् भगवान को स्वेच्छानुसार श्रद्धापूर्वक जो भी प्रदान करें, वे उसे स्वीकार करते हैं। अतः अपनी परिस्थिति के अनुसार आयु और स्वास्थ्य का ध्यान रखते हुए व्रत करें। गीता-महिमा में कहा गया है –

सर्वोपनिषदो गावो, दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता, दुग्धं गीतामृतं महत् ।।

भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में अभय वाणी दी हुई है –

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।।

जय कृष्ण ! OOO

रामगीता (७/ २)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम-विलक्षण व्याख्याकार हैं। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज हैं। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने किया है। – सं.)

नारदजी जब क्षीरसागर से चले, तो प्रभु ने क्या किया?

श्रीपति निज माया तब प्रेरी । १/१२८/८

विद्या माया प्रभु की सेविका हैं और उन्हें प्रिय हैं। प्रभु ने विद्या माया को बुलाकर कहा कि तुम अपना खेल दिखा दो, जिससे नारद का भी भ्रम मिट जाए और नारद के माध्यम से संसार के लोगों में भी सावधानी आ जाए। यह जो संकेत है कि भगवान भक्त के जीवन के द्वारा ऐसा कुछ प्रकट करते हैं, जो वैसा नहीं होता, जैसा संसारी व्यक्ति के जीवन में होता है। यह मूलत: समझाने का एक व्यावहारिक प्रयास है। अभी एक देवी आईं, तो उन्होंने कहा कि परसों कथा बहुत ही क्लिष्ट हो रही थी, आज आप थोड़ा नीचे उतर आए, तो हम लोगों के लिये अच्छा हो गया। तो मैंने कहा, ऊपर-नीचे यहाँ तो सब कुछ एक ही है, तत्त्व का अवतार। नीचे उतरने का अर्थ तो इतना है कि किसी चरित्र का आश्रय लेकर, जिससे विषय सरल प्रतीत हो या कोमल-सा प्रतीत हो और कहीं कुछ क्लिष्टता हो, तो मूलत: उस सूत्र को हम समझ लें। इसका अभिप्राय यह हुआ कि मैं और मेरापन, तू और तेरापन तो व्यवहारत: विश्व में रहेगा ही और उसका त्याग करना कोई अपेक्षित भी नहीं है, लेकिन व्यक्ति का अन्त:करण इससे मुक्त हो जाए, यही ज्ञान का उद्देश्य है, ज्ञान का तात्पर्य है। इसके लिए अनेकानेक उपाय बताए गए। ममता के सम्बन्ध में स्वामीजी ने प्रश्न रखा था। मानस में ममता की बड़ी अद्भुत व्याख्या की गई है ! ममता को कहीं दाद से जोड़ा गया। शरीर में दाद हो जाता है – **ममता दद्रु कंडु इरसाई।** ममता दद्रु है, दाद का रोग है। पर इतना ही नहीं, कहीं-कहीं ममता को मल कहा गया है –

तब मथि काढ़ि लेइ नवनीता ।

बिमल बिराग सुभग सुपुनीता ।। ७/११६/ख/१६

जोग अगिनि करि प्रगट तब कर्म सुभासुभ लाइ ।

बुद्धि सिरावै ग्यान घृत ममता मल जरि जाइ ।।

७/११७/क

इसमें ममता को मल बताया गया। मानस रोगों के सन्दर्भ में ममता को दद्रु कहा गया। तीसरे प्रसंग में ममता को अँधेरी रात बताया गया –

ममता तरुन तमी अँधिआरी। ५/४६/३

ममता क्या है? घोर अन्धकार भरी रात है और अन्धेरी रात में कुछ दिखाई नहीं देता। यदि ममता की अन्धेरी रात में कोई कहे कि कुछ दिख नहीं रहा है, कुछ सूझ नहीं रहा है, तब तो कोई बात नहीं है, पर अगर ममता की अन्धेरी रात में बैठा हुआ कोई व्यक्ति यह कहे कि मैं सब कुछ साफ-साफ देख रहा हूँ, तो उसमें व्यंग्य यह है कि अगर उसे ममता की अन्धेरी रात में सब स्पष्ट दिखाई दे रहा है, तो वह उल्लू ही होगा। क्योंकि अन्धेरे में मनुष्य तो नहीं, उल्लू ही देख पाता है। गोस्वामीजी ने कहा कि ममता के अन्धेरे में जिसको दिखता है, वह उल्लू है। उल्लू कौन है?

ममता तरुन तमी अँधियारी ।

राग द्वेष उलूक सुखकारी ।।

ये राग और द्वेष के दो उल्लू जिसके हृदय में हैं, वह कैसा देखेगा? उसे या तो राग से या द्वेष से किसी में गुण ही गुण दिखाई देता है, किसी में दोष ही दोष दिखाई देता है। इसलिए ममता को अँधेरी रात कहा गया है। कहीं पर ममता को बन्धन बताया गया है। मानो ममता के अनेक रूप हैं। वह भिन्न रूपों में – किसी के जीवन में दाद के रूप में है, किसी के जीवन में अन्धकारमयी रात्रि के रूप में है, तो किसी के जीवन में मल के रूप में है। ममता बन्धन के

रूप में भी प्रतिपादित है। उसकी बड़ी सुन्दर व्याख्या प्रभु श्रीरामभद्र ने विभीषण के समक्ष की। आइए थोड़ा उस प्रसंग पर भी दृष्टि डालें। इससे समझने में थोड़ी सुविधा होगी।

विभीषण की समस्या क्या है?

विभीषण को गोस्वामीजी आध्यात्मिक अर्थों में कहते हैं कि हम सभी जिसकी संज्ञा जीव है, वह मानो विभीषण है। विनय पत्रिका में उन्होंने यह शब्द चुना जीव के लिए –

जीव भवदंघ्रि सेवक विभीषण

बसत मध्य दुष्टाटवीग्रसितचिंता।। (विनयपत्रिका, ५८)

वह लंका में निवास करता है और उसकी समस्या बड़ी जटिल है। जटिल क्या है? जब तीनों भाइयों ने तपस्या की, तो शंकरजी और ब्रह्माजी ने उनको वरदान दिया। पर तीनों ने अलग-अलग वरदान माँगा। रावण ने कहा कि मेरी मृत्यु बन्दर और मनुष्य को छोड़कर किसी देवता अथवा किसी अन्य के द्वारा न हो। उसकी बन्दरों या मनुष्यों के प्रति कोई उत्कृष्ट भावना नहीं थी। उसका अभिप्राय था कि बन्दर और मनुष्य तो हमारे भोजन हैं, इनको तो हम खाते हैं, ये तो हमारी शक्ति बढ़ाते हैं। जब बन्दरों की सेना की बात सुनी, तो रावण ने यही कहा –

आए कीस काल के प्रेरे ।

छुधावंत सब निसिचर मेरे ।। ६/३९/३

तुम लोग भूखे हो, जाकर खूब भोजन का आनन्द लो। इस प्रकार से रावण का वर्णन किया गया है। जीवन की समस्या है कि मोह की रात्रि है। रावण को गोस्वामीजी कहते हैं, रावण मूर्तिमान मोह है। अब उसको उस पूरे सन्दर्भ से जोड़कर उस पर ध्यान देंगे। मोह माने क्या?

मोह निसा सब सोवनिहारा ।। २/९२/२

मोह की रात्रि में व्यक्ति सो रहा है। सो रहा है, तो नहीं देख रहा है। अगर जगकर देखेगा भी, तो राग और द्वेष ही उसके अन्त:करण में भरे हुए हैं। वह देखने का दावा तो करता है, पर वह दिखाई देना भी सत्य नहीं है। विभीषण की स्थिति बड़ी जटिल है, जैसे जीव की है। अपनी-अपनी बुद्धि से अब तीनों भाई वरदान माँगते हैं। जिसकी जैसी धारणा थी, जिसको जो महत्त्वपूर्ण मानता था, उसने उसे माँग लिया। रावण अमरता को सबसे बड़ी वस्तु मानता है, इसलिए उसने अमरता माँगी। कुम्भकर्ण बड़ा भोजन-भट्ट था। उसको भोजन बहुत चाहिए। उसके मन में विचार यह था कि दिन-रात खाते ही रहें, बस भोजन आता रहे और भोजन करते रहें। लेकिन ब्रह्मा डर गये। बोले यह इतना भोजन प्रिय है, यदि इसने दिन-रात खाना प्रारम्भ किया, तब तो – **बिस्व बेगि सब चौपट होई ।**

यह तो सारे संसार को खा जाएगा। तो उन्होंने सरस्वती जी को बुलाया। बोले, देवी इसकी बुद्धि को जरा पलटिए। सरस्वती जी ने बुद्धि को पलट दिया। वह वरदान तो यह माँगना चाहता था कि छह महीने जागें और एक दिन सोवें। पर ब्रह्मा के द्वारा प्रेरित सरस्वती जी के द्वारा उसकी बुद्धि पलट दी गई और उसके मुँह से निकला कि हम छ: महीने सोवें और एक दिन जागें। ब्रह्मा ने कहा – बहुत अच्छा। अब गोस्वामीजी की तो अपनी शैली है। उन्होंने कहा, कुम्भकर्ण कौन है? अभिमान है। अभिमान के अनेक रूप हैं। अभिमान का एक रूप वह है, जो बालि के जीवन में था। अभिमान का सूक्ष्म रूप वह है, जिसका यत्किंचित् दर्शन आवेशावतार परशुराम जी में दिखाई देता है और सबसे भयानक जो अभिमान का रूप है, वह कुम्भकर्ण है। मानो भगवान यह जानते हैं कि अहंकार अगर निरन्तर जगता रहे, तब तो बहुत अशान्ति, युद्ध, बहुत विनाश होगा। यह समझ में आता है। अब आप सोचें। आप इतने व्यक्ति अगर शान्तिपूर्वक बैठे हुए हैं और जग रहे हैं, किन्तु कुम्भकर्ण तो सोया ही होगा। आपका अभिमान – मैं क्यों नीचे बैठूँ? मैं सबसे ऊपर क्यों न बैठूँ? इसको क्यों ऊपर बैठा दिया? हर व्यक्ति लड़ाई-झगड़े के लिए तुल जाता है। कभी यहाँ सत्संग में भी लोग लड़ाई पर तुल जाते हैं। यह मान लीजिए कि यहाँ आकर कुम्भकर्ण जग गया, तो लड़ाई-झगड़ा होगा ही। लेकिन अगर अभिमान सोया रहे, तो? किसी ने पूछा कि सोना अच्छा कि जागना? तो गोस्वामीजी ने कहा कि इसका निर्णय मैं तब दूँगा, जब नाम बताओगे। तो उसने कहा, कुम्भकर्ण। तो उन्होंने कहा, वह सोता ही रहे तो अच्छा है – **कुंभकरन सम सोवत नीके ।**

यह कुम्भकरण जितना अधिक सोया रहे, उतना ही कल्याणकारी है। तो एक ओर मोह, दूसरी ओर अभिमान है। बेचारे विभीषण बड़े बुद्धिमान हैं। उन्होंने वरदान माँगा –

गए बिभीषन पास पुनि कहेउ पुत्र बर मागु।

तेहिं मागेउ भगवंत पद कमल अमल अनुरागु ।।

१/१७७/०

उन्होंने वरदान माँगा, अमला भक्ति का। कहा – चरणों

में अमल प्रेम हो। वरदान मिल गया। पर वरदान मिल जाने से ही विभीषण की सारी समस्याओं का समाधान हो गया क्या? संकेत वही है। महाराज मनु ने तपस्या करके श्रीराम को पुत्र रूप में पाया। उनके विवाह का दिव्य आनन्द लिया। पर इतना होते हुए भी क्या महाराज दशरथ पूरी तरह से अन्त:करण के दोषों से मुक्त हो गये? महारानी कैकेयी का इतना महान चरित्र दिखाई देता है, वहाँ पर भी तो दोष दिखाई देते हैं। उसे गोस्वामीजी ने कवित्वपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया। उन्होंने महाराज दशरथ और कैकेयी के लिए काव्यमय कल्पना की – जैसे किसी पर्व पर स्नान करने के लिय तीर्थ यात्री एकत्र हों। नदी में जहाँ पर घाट हो, सीढ़ी हो, वहाँ लगता है कि यहाँ नहाना सुरक्षित है। लेकिन जिस सीढ़ी से उतर कर नहाना है, उसमें काई लगी हुई हो और उस पर व्यक्ति का ध्यान न जाए और काई पर पैर फिसलने से गिर जाए, तो कितना कष्ट होता है? हड्डी टूट जाती है। स्नान के स्थान पर चिकित्सक के पास पड़े रहता है, कष्ट पाता है। गोस्वामीजी ने कहा कि दशरथजी वह तीर्थ यात्री हैं, जो रामराज्य के तीर्थ-जल में नहाना चाहते थे। उन्हें कैकेयी जी पर भरोसा था कि कैकेयी के हृदय में तो राम के प्रति इतना प्रेम है कि राम को राज्य देने में उनको कोई आपत्ति नहीं होगी, अपितु उनको बड़ी प्रसन्नता होगी। तो बड़े निश्चिन्त मन से गये, लेकिन फिसल गये। कहाँ फिसल गये?

राम तिलक हित मंगल साजा ।
परब जोग जनु जुरे समाजा ।।
काई कुमति केकई केरी ।
परी जासु फल बिपति घनेरी ।। १/४०/७

कैकेयी की कुमति की काई। कुमति क्या थी? वही ममता। मन्थरा ने जिसको चैतन्य कर दिया, जाग्रत कर दिया कि भरत तुम्हारा बेटा है, भरत तुम्हारा अपना है। अपना अपना ही होता है, पराया पराया ही होता है। यह सत्य तो है, पर जब यह भी मान लें कि सदा अपना तो एक ईश्वर ही हो सकता है, संसार में कोई व्यक्ति नहीं, तब ठीक है। तो ममता की वह काई, जिसके माध्यम से उसने वह विपत्ति उत्पन्न कर दिया। तो इस तरह से यह दिखाई देता है कि अनेकानेक व्यक्तियों के जीवन में यह समस्या भिन्न-भिन्न रूपों में आई और विभीषण के जीवन में भी वह दिखाई देती है। यद्यपि वे लंका में रहते हैं, पर रावण जो कुछ करते हैं, उसमें वे सहयोगी नहीं हैं, उसमें भाग नहीं लेते, पाप नहीं करते, बुराई नहीं करते। लेकिन कहीं न कहीं रावण के प्रति उनकी गहरी ममता है कि रावण मेरा बड़ा भाई है। मुझसे बड़ा स्नेह करता है और वह संसार में भले ही बुरा काम कर रहा हो, पर मेरा तो बड़ा ध्यान रखता है। मेरे लिये मन्दिर बनवा दिया, पूजन की सुविधा दे दी मुझे। माने यह ममता उनकी शरणागति के मार्ग में बाधक बनी हुई है। इसका अभिप्राय यह है कि ये समस्याएँ बुरे व्यक्तियों के लिये समस्या नहीं है, वे तो ठीक हैं। पर जो साधक हैं, उनके जीवन में यह समस्या आती है। विभीषण के जीवन में यह समस्या थी। अब इसके निराकरण के लिये ही हनुमानजी का प्रयास है। बहुत बड़ा व्यंग्य है कि दूसरों की ममता पर लोग व्यंग्य करते हैं और यह भूल जाते हैं, खुद में कितनी ममता है। वे ऐसा मानते हैं कि हम ही एक ऐसे हैं, जो ममता रहित हैं और सब ममता वाले हैं। इसका सबसे बड़ा दृष्टान्त रावण है। रावण ने पहले आदेश दिया कि इस बन्दर को मार डालो। लेकिन जब मारने का प्रयत्न किया, तो विभीषणजी आ गये और निवेदन किया कि राजनीति के नियम के अनुसार दूत का वध नहीं किया जाता –

नीति बिरोध न करिअ प्रभु । ६/८/०

रावण ने कहा, विभीषण ठीक कहते हैं। दूत को मृत्युदण्ड देना ठीक नहीं है। विभीषण की ममता थोड़ी और बढ़ी कि मेरी बात को रावण ने महत्त्व दिया और अपना आदेश वापस ले लिया। पर रावण ने यह कहा कि मृत्युदण्ड नहीं, पर दण्ड तो दिया जाएगा। क्या? बोला – इसकी पूँछ में कपड़े लपेटो और घी-तेल डालकर आग लगा दो। आज्ञा दे सकता था कि इसकी नाक काट लो, कान काट लो, कोई अंग काट लो। पर नहीं, पूँछ को जला दो। सुनकर आश्चर्य हुआ, पूँछ को क्यों? रावण ने कहा कि मुझसे बढ़कर कोई ज्ञानी तो है नहीं और यह बन्दर अगर मेरे पास आ ही गया है, तो मैं चाहता हूँ कि इसका कल्याण हो जाए। रावण का कल्याण हनुमानजी करना चाहते थे, पर रावण तो यही मानता है कि सबका कल्याण और अकल्याण तो मेरे हाथ में है। उसने कहा कि ममता से व्यक्ति अगर ऊपर उठ जाये, तो वह महान उपलब्धि है। मैं चाहता हूँ कि बन्दर की ममता को नष्ट कर दी जाए। बन्दर की ममता का केन्द्र पूँछ है –

कपि कें ममता पूँछ पर सबहि कहउँ समुझाइ ।
तेल बोरि पट बाँधि पुनि पावक देहु लगाइ ।।
५/२४/०

(क्रमशः)

रासलीला का तात्त्विक विवेचन

पं. श्री अखिलेश शास्त्री जी, वृन्दावन

(वृन्दावनवासी पं. अखिलेश शास्त्री जी प्रसिद्ध भागवत् प्रवचनकार हैं। वे कई वर्षों से रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में भागवत कथा सुनाते चले आ रहे हैं। आश्रम में २०२५ और २०२६ में दो वर्ष रासलीला पर प्रवचन हुए थे। विवेक ज्योति के पाठकों हेतु उसी का सारांश स्वयं शास्त्री जी ने आलेख के रूप में प्रस्तुत किया है। –सं.)

रास भगवान श्रीकृष्ण की लीला है, चरित्र नहीं। चरित्र सुनकर, समझकर अनुकरणीय होता है, लीला का अनुकरण नहीं किया जाता। मनुष्य जीवन के सर्वान्तरतम स्तर में एक रस छिपा हुआ है। **लयनं लातीति लीला** – अर्थात् छिपे हुए उस दिव्य परम मधुर रस को बाहर निकाल कर उसे प्रकट कर देना, लीला का काम है। हमारा जीवन रस तत्त्व के आधार पर टिका हुआ है। जीवन का उद्‌गम रस से हुआ है। हम रस के लिए ही जी रहे हैं और उस रस में डूब जाना चाहते हैं। साहित्य में जिसको रस कहा गया है, वेद-पुराण आदि में उसको आनन्द कहा गया है। **रसो वै सः** – रस ही परमात्मा है। '**रसं ह्ये वाऽयं लब्ध्वा आनन्दी भवति**' – इस रस को प्राप्त करके जीवात्मा आनन्दमय होता है। ''**का ह्येवऽन्यात् कः प्राणान्यात् यदेश आनन्दो भवति**'' – यदि रस अथवा आनन्द न हो, तो जीवन किसका रहेगा? रसहीन जीवन निष्प्राण हो जाता है। दीपक तभी तक प्रकाशित होता है, जब तक उसमें तेल रूप रस रहता है। आँखों की चमक आँसुओं के रूप में रहती है। आँसू सूख जाए, तो देखना बन्द हो जाता है।

सूखते ही नीर, नूर आँखों का गया ।
बुझ ही जाते हैं दिये, जिस वक्त रोगन सब जला ।।

सूर्य मंडल से ऊपर सोम रस का प्रवाह मिलने से अरबों-खरबों टन प्रकाश फेंकने में सूर्य समर्थ होता है। समग्र सृष्टि का अधिष्ठान एवं अवभाषक रस है। इस दिव्य रस को उपभोग्य बनाने के लिए श्रीकृष्ण रास का आयोजन करते हैं। स्वयं रसरूप रहते हुए भी उसको आस्वाद्य बनाने के लिए भगवान श्रीकृष्णचन्द्र नन्दनन्दन स्वयं रसिक बनते हैं और अपने दिव्य संकल्प से रसोपयोगी समस्त उद्दीपन सामग्री प्रकट करते हैं। इसलिए उद्‌बोधन या उल्लेख मिलता है '**एकोऽहं बहुस्याम**' अर्थात् भगवती श्रुति कहती हैं कि वह जो परमात्मा एक से अनेक के रूप में प्रकट हुआ, यह सब रास लीला के प्रसंग में सर-सरोवर, पर्वत-लता, वृक्षावली, मेघ, सारस, चक्रवात, मयूर और कोकिल आदि सब भगवान के संकल्प से प्रकट दिव्य रसमय हैं। ऐसे

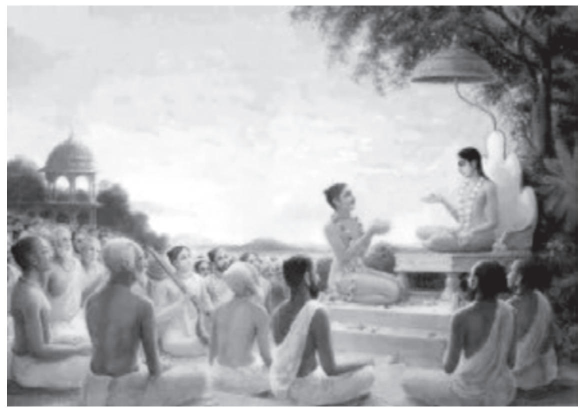

श्रीशुकदेव जी महाराज

उद्दीपन उपकरणों के आधार पर भगवान गोपांगनाओं के साथ रास विहार करने का संकल्प करते हैं। भगवान श्रीकृष्ण ने कुबेर, वरुण, ब्रह्मा, इन्द्रादि समस्त देवताओं को बताया कि मैं ही अखिल ब्रह्माण्ड नायक परात्पर परब्रह्म पूर्ण लीला पुरुषोत्तम आनन्दकन्द जगदाधार जगदीश्वर रसिक शिरोमणि श्रीकृष्ण चन्द्र के स्वरूप में हूँ।

इन समस्त देवताओं का मान-मर्दन करते हुए भगवान ने यह बताया कि मेरी प्राप्ति केवल प्रेम से ही सम्भव है। अर्थात् परम प्रेमस्वरूपा गोपियों का अन्त:करण साधना से शुद्ध हुआ और उस अन्त:करण में परम प्रेम परमात्मा का जगा, तब परमात्मा उसे प्रेम दान करने के लिए रासलीला का संकल्प करते हैं। श्रीशुकदेव जी कहते हैं – '**रन्तुं मनश्चक्रे**' – भगवान ने रास करने का मन बनाया। क्योंकि परमात्मा अमन: है अर्थात् मन नहीं है। तब भगवान ने रास के लिए मन तैयार किया। श्रीशुकदेव जी के मुख से रासपंचाध्यायी

का पहला श्लोक निकलता है –

भगवानपि ता रात्रिः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः ।
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः।।
(श्रीमद्भागवत महापुराण १०/२९/१)

इस पद्य में अपि एवं रन्तुं मनश्चक्रे अत्यन्त सारगर्भित है। इसमें यह ध्यान देने योग्य है कि भगवान ने भी रमण करने का संकल्प किया, अपि शब्द आश्चर्य और असम्भवता का अर्थ प्रकट करता है। जैसे –

'आत्मारामश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे' (१/७/१०) अर्थात् जिनके हृदय की समस्त गाँठें समाप्त हो गयी हैं। ऐसे महापुरुष आत्माराम मुनि ही उरुक्रम भगवान के परमप्रेम के अधिकारी होते हैं। श्रीशुकदेव जी ने स्वयं कहा है – (२/१/९)

परिनिष्ठितोऽपि नैर्गुण्य उत्तमश्लोकलीलया।
गृहीतचेता राजर्षे आख्यानं यदधीतवान् ।।

अर्थात् भगवान श्रीकृष्ण के ऐसे दिव्य गुण की बड़े-बड़े आत्मा, दिव्यात्मा, पुण्यात्मा, महात्मा, जो आत्माराम की समाधि में बैठे हैं, आत्मानन्द का अनुभव कर रहे हैं, ऐसे महापुरुष भी जब उन परमात्मा का श्रीकृष्ण चन्द्र के दिव्य गुणों का चिन्तन करते हैं, तो उनकी समाधि खुल जाती है। जैसे –

अहो बकी यं स्तनकालकूटं
जिघांसयापाययदप्यसाध्वी।
लेभे गतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यं
कं वा दयालुं शरणं व्रजेम।। (३/२/२३)

अर्थात् जो पूतना मारने के लिए आई, उसको भगवान ने पुरस्कार में सद्गति प्रदान की और निर्ग्रन्थ जो महापुरुष हैं, वे भी भगवान के गुणों से आकृष्ट होकर भगवान की ही भक्ति में लग जाते हैं। अर्थात् वे परमात्मा श्रीकृष्ण किसके प्रति आकृष्ट होकर रासविहार करने का संकल्प करते हैं? इसमें हेतु का संकल्प करते हुए कहते हैं – ताः वीक्ष्य, यह पद दिया गया है। बड़े-बड़े महापुरुष जिस परमात्मा के गुणों से आकृष्ट होते हैं, वह परमात्मा भी गोपीजनों की दिव्य स्थिति और उनके निश्छल प्रेम को देखकर उनको अपने आनन्द स्वरूप में आत्मसात् करने के लिए प्रवृत्त होते हैं, रमण करते हैं।

रमण शब्द का अर्थ है खेल करना, सहजता से आनन्द प्राप्त करना, इसमें कोई अश्लीलता नहीं है। भगवान की बाल-लीला में भी भगवान श्रीकृष्ण बछड़े के साथ रमण करते हैं, सखाओं के साथ रमण करते हैं। भगवती श्रुति कहती है – सविता गोभिः रसं भुङ्क्ते। यह वैदिक श्रुति वाक्य है। इसका अर्थ है सूर्य अपनी किरणों से रस का उपभोग करता है। अर्थात् अपनी किरणों से खींचकर आत्मसात् कर लेता है, अपने स्वरूप में मिला लेता है।

इसी प्रकार कोटि-कोटि कल्पों से जिन बृजांगनाओं ने भगवान की प्राप्ति के लिए साधना की है, जिनका जीवन 'अनेक जन्मसंसिद्धिस्ततो याति परां गतिम्' इसके आधार पर उन समस्त गोपियों का जीवन निर्वासनिक हो गया है, दिव्य हो गया है, ऐसे दिव्य निर्वासनिक जीवन को देखकर परात्पर परब्रह्म पुरुषोत्तम आनन्दकन्द ब्रजेन्द्रनन्दन रसिक शिरोमणि भगवान श्रीकृष्ण दिव्य गोपियों को आकृष्ट करते हैं और आत्मसात् करके कृतकृत्य बना देते हैं। भगवान श्रीकृष्ण की रासलीला के इस रहस्य का रसास्वादन करने के लिए निम्नलिखित पाँच बातों का ठीक-ठीक अनुशीलन करना आवश्यक है –

१. रास क्या है?
२. रास किसने किया?
३. रास किसके साथ किया?
४. रास कब किया?
५. रास क्यों किया?

१. रास क्या है – नाट्यशास्त्र में रास एक नृत्य विशेष का नाम है, जिसको हल्लीषक नृत्य कहते हैं। इस नृत्य में एक कुशल नर्तक अनेक नायिकाओं के दीर्घ मण्डलाकार के बीच में नर्तन इतनी कुशलता और तीव्रता से घूमकर करता है कि मण्डलाकार खड़ी हुई नर्तकी-नायिकाओं को ऐसा प्रतीत होता है कि नर्तक हमारे सम्मुख नृत्य कर रहा है। इस हल्लीषक नृत्य का लक्षण बताते हुए भरतनाट्यम्

में कहा गया है –

नर्तकाभिः अनेकाभिः मण्डले विचऋश्णुभिः।
यद्येको नृत्यति नटः तद् हल्लीशकं बिदुः ।।

भगवान श्रीकृष्ण की रास-लीला में कई प्रकार के नृत्यों का प्रकाशन हुआ है। हमारे महाराजश्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती जी कहते हैं कि संस्कृत में रा और ला को अभेद माना जाता है अर्थात् रास, लास एवं लास्य, इन तीनों शब्दों का अर्थ नृत्य ही है। संस्कृत व्याकरण में 'र' और 'ल' के अभेद की तरह 'ल' और 'ड' को भी अभेद माना जाता है। रास, लास और डांस एक ही है। श्रीकृष्ण की रासलीला में प्रमुख रूप से चार प्रकार के नृत्य प्रकट हुए हैं। मण्डलाकार गोपियों के मध्य में नृत्य करते हुए श्रीकृष्ण का स्वरूप, जिसको हल्लीषक नृत्य कहते हैं। दूसरा दो-दो गोपियों के बीच में एक श्रीकृष्ण आजू-बाजू की गोपियों के कन्धे पर हाथ रख के नृत्य करना, जिसमें दोनों ओर की गोपियों को प्रतीत होता है कि श्रीकृष्ण हमारे साथ नृत्य कर रहे हैं। मूल ग्रन्थ में इसी को बताया है – **रासोत्सवः सम्प्रवृत्तो (१०/३३/३)।** तीसरा एक-एक गोपी एक-एक कृष्ण का मिलकर रास और चौथा महारास है –

कृत्वा तवान्तमात्मानं यावतीर्गोपयोषितः। (१०/३३/२०)

इस महारास में सम्मिलित हुई गोपियों की संख्या ३० करोड़ है – **त्रिंशत् कोटि समावृत्या।** ३० करोड़ गोपियों के साथ भगवान ने अपनी योगमाया के द्वारा ३० करोड़ विग्रह प्रकट कर सबके साथ रास-विलास किया। इसी के अन्तर्गत महारास का स्वरूप निर्धारित हुआ –

पादन्यासैर्भुजविधुतिभिः सस्मितैर्भ्रुविलासैः।
(१०.३३.८)

इस प्रकार सावधानी से अवलोकन करने पर स्पष्ट प्रतीत होता है कि भगवान श्रीकृष्ण ने अपनी विलक्षण नृत्य-कला के द्वारा अपने स्वरूप का आनन्द प्रदान करके गोपियों को कृतकृत्य करते हुए आत्मसात् किया। **अखिलकलादिगुरुर्ननर्त।(१०/१६/२६)** जिसको देखकर आकाश-मण्डल में दिव्य देवता अपनी दिव्य देवियों के साथ आकर विमानों पर ठिठक कर रह गये – **शशांक स्वविस्मितो भवत्**। चन्द्रमा भी विस्मित हो गया। परम निवृत्तिपरायण परमहंस मुनीन्द्र श्रीशुक देव जी ने इस रासलीला का वर्णन किया। जो निपट गँवार, सत्संगविहीन और मूढ़ होगा, वही श्रीकृष्ण की दिव्य रासलीला में अश्लीलता का आरोप करेगा।

निधिवन, वृन्दावन

२. रास किसने किया?

अखिल ब्रह्माण्ड-नायक, परब्रह्म परमात्मा, जगत-नियन्ता, जगदाधार भगवान श्रीकृष्ण ने रास किया। अर्थात् रास रस के नायक भगवान श्रीकृष्ण केवल श्री नन्द यशोदा के औरस पुत्र ही नहीं, बल्कि षडैश्वर्यसम्पन्न अर्थात् समग्र ऐश्वर्य, समग्र धर्म, यश, श्री एवं समग्र ज्ञान-वैराग्य से परिपूर्ण परमात्मा ही भगवान श्रीकृष्ण हैं। इसलिए रास किसने किया, इसको स्पष्ट प्रकट करने के लिए रास पंचाध्यायी के पहले अध्याय का पहला श्लोक का पहला शब्द भगवान है।

अतः रासलीला के सम्बन्ध में कतिपय संदेहों पर आरोप किया जाता है कि यह रासलील किसी साधारण व्यक्ति के द्वारा अश्लील क्रिया-कलाप है। इसलिये श्री शुकदेव जी ने समस्त साधक-मनीषियों एवं साधारण लोगों को सावधान करते हुए स्पष्ट कर दिया है कि रासलीला का व्यवहार करने का संकल्प स्वयं अखिल ब्रह्माण्ड-नायक रासरासेश्वर रसिक शेखर भगवान श्रीकृष्ण ने किया – **भगवानपि ता रात्रीः ...।**

'रास के प्रसंग से ठीक पहले २९वें अध्याय की लीला में जो सांकेतिक सूत्र दिए गये हैं, वे स्पष्टतः रासलीला की दिव्यता के सूचक हैं। बाबा नन्द के एकादशी का उद्यापन

कर ठीक अर्द्धरात्रि के समय स्नान करने के लिए यमुना में प्रवेश करने की कथा है। धर्मशास्त्र के अनुसार अर्द्धरात्रि के समय जल में प्रवेश कर स्नान नहीं करना चाहिए, वह समय जल के अधिष्ठातृ देवता का है। असमय में जल में प्रवेश करने से वरुण के दूत नन्दबाबा को पकड़ कर वरुण-लोक ले गए और उनको अपराधी के समान बाँधकर एक कोने में बैठा दिया। शेष बृजवासी जो यमुना तट पर थे, उन्होंने देखा कि अरे, नन्दबाबा कहाँ चले गए ! उन लोगों ने घबराकर चिल्लाते, रोते हुए श्रीकृष्ण से सारी घटना बताई। घटना के स्वस्वरूप को समझकर भगवान श्रीकृष्ण जल में गोता लगाकर वरुण लोक पहुँचे। भगवान श्रीकृष्ण को सीधे सहसा अपने लोक में आया देखकर भक्तराज वरुण ने दौड़कर श्रीकृष्ण को साष्टांग प्रणाम किया और षोडशोपचार से भगवान की पूजा की, बहुमूल्य सिंहासन पर बैठाया। यह विधिवत् सत्कार देखकर नन्द बाबा के आश्चर्य का ठिकाना न रहा ! वे भगवान श्रीकृष्ण के ऐश्वर्य को देखते ही रह गये। साथ ही भक्तराज वरुण हाथ जोड़कर भगवान से बोले, प्रभु आपकी बहुत बड़ी कृपा, जो आपके चरण इस वरुण लोक में पड़े। आपकी चरण-रज से यह वरुण-लोक धन्य हो गया। वे अत्यन्त विनम्र एवं सहज भाव से भगवान से बोले, प्रभु मेरे लिये क्या आज्ञा है? मैं आपकी क्या सेवा करूँ?

भगवान श्रीकृष्ण कुछ नाराजगी व्यक्त करते हुए बोले – सेवा पूछता है? हमारे बाबा कहाँ है? नन्द बाबा एक कोने में दुबके बैठे हुए थे। हमारे बाबा को कैसे यहाँ लाने की हिम्मत हुई? तुमने अपराध किया है। इतना कहना था कि वरुण थोड़ा सहम गए और भगवान के श्रीचरणों में साष्टांग लेटकर प्रणाम किए। उन्होंने बाबा के सहित वरुण लोक की दिव्याति दिव्य सामग्री भगवान के चरणों में समर्पित की और कहा – हे ! प्रभु मैं ही नहीं, यह सम्पूर्ण वरुण लोक आपके श्रीचरणों में समर्पित है। आपकी कृपा कुबेर को प्राप्त हुई, इन्द्र को प्राप्त हुई, साथ-ही-साथ श्रीचरणों की चरण रज से समस्त देवताओं के सहित भगवान शंकर और ब्रह्मा भी धन्यातिधन्य हुए। केवल मैं एवं मेरा लोक रह गया था। इसी कारण मैं आपके बाबा को यहाँ लाया और इस कारण से आपके चरण वरुण लोक तक पहुँचे। अत: वरुण लोक भक्त और भगवान दोनों की रज से धन्य हो गया। बाबा को लाना आपको बुलाने का उद्देश्य था।

भगवान श्रीकृष्ण जब बाबा को लेकर आए, तो समस्त बृजवासियों में हर्ष की लहर दौड़ गई और बृजवासियों के पूछने पर बाबा ने वरुण लोक की समस्त घटना का वर्णन बृजवासियों के सम्मुख किया। घटना को सुनकर समस्त बृजवासी आश्चर्य चकित हो गए और सोचने लगे जब इतना वैभवशाली वरुण हमारे लाला का षोडशोपचार से पूजन कर रहा है, दिव्य सामग्री भेंट में दे रहा है और बार-बार चरणों में गिरकर प्रणाम कर रहा है, तो इससे यह सिद्ध होता है कि हमारा लाला कोई साधारण बालक नहीं है। अर्थात् हमारा लाला भगवान है। ऐसा निश्चय करने के बाद सभी ने श्रीकृष्ण से प्रार्थना की कि हमको भी अपने धाम का दर्शन करावें। भगवान श्रीकृष्ण ने सबको अपने दिव्य धाम में प्रवेश कराया।

समस्त ग्वाल-बालों को दिव्य धाम में भेजने के बाद भगवान रसस्वरूप श्रीकृष्ण ने रास में प्रवेश करने हेतु श्रीकिशोरी जी का आवाहन किया।

यद्यपि श्रीराधा जी की वृन्दावन के अनेक सम्प्रदाय में अलग-अलग मान्यता है। अर्थात् राधा शब्द का अर्थ है – 'राधनेति सर्वान् कामान् इति राधा', जो सम्पूर्ण कामनाओं को प्रदान करनेवाली शक्ति है, उसका नाम है राधा। 'रा' शब्द आयान का वाचक (दानवाचक) है और 'धा' शब्द निर्वाण का वाचक है। अर्थात् जो भोग और मोक्ष प्रदान करे, वह राधा है। 'रा' शब्द के उच्चारण करते ही जीव को जीवनमुक्ति प्राप्त होती है और 'धा' शब्द के उच्चारण करते ही विधेय मुक्ति प्राप्त हो जाती है। कहा गया है –

रा शब्दोच्चारणात् भक्तो राति मुक्ति सुदुर्लभाम् ।
धा शब्दोच्चाराणात् दुर्गे धावत्येष हरेः पदम् ।।

(ब्रह्मवैवर्तपुराण, ख. २/अ. ४८)

राधोपनिषद में राधा का स्वरूप अलग प्रकार से वर्णित है – भगवान श्रीकृष्ण राधा की आराधना करते हैं, अत: वे राधा हैं अथवा परमातरंग आराधनीय रूप में स्वयं आराधित

हैं अत: वे राधा हैं – "**आह्लादिनी वरीयषी परमातरंगरूपा कृष्णेन आराध्यते इति राधा, कृष्णं समाराधयतीति राधा।**" राधा सर्वेश्वरी सनातनी सर्व विद्या हैं और जिनका पूर्णरूपेण वर्णन नहीं किया जा सकता है। ये ऐसी प्राण-अधिष्ठात्री देवी हैं, जिनको बिना जाने अर्थात् राधा के बिना श्रीकृष्ण की उपासना सम्भव नहीं है।

राधा वै हरेः सर्वेश्वरी सर्वविद्या सनातनी कृष्ण ।
प्राणाधि देवी चेति विवित्ते वेदाः स्तुवन्ती शैवयश्च।
प्रसीदति तस्य करतलावकलितम परम् धामेति
ऐतां विजाय कृष्णमाराधयितुमिच्छति सूक्ष्मतमो मूढतमश्चेति।।

श्रीब्रज वृन्दावन विहारिणी परम सौन्दर्य लावण्य कृपा मूर्ति श्रीराधा जी की कृपा बिना कृष्ण तत्त्व का ज्ञान कथमपि सम्भव नहीं है। केवल श्रीकृष्ण की उपासना करने वाला व्यक्ति आराधना में सफल नहीं होता –

वन्दे श्रीराधिकां देविं बृजारण्यविहारिणीम् ।
यस्याः कृपां विना कोऽपि न कृष्णं ज्ञातुमर्हति ।।
गौर तेजो विना यस्तु श्याम तेजः समर्चयेत् ।
जपेद्वा ध्यायते वापि स भवेत् पातकी शिवे ।।

इस तरह से श्रीराधा के बिना श्रीकृष्ण की प्राप्ति और श्रीकृष्ण के बिना श्रीराधा की प्राप्ति सम्भव नहीं है। श्रीराधा प्रेमाश्रया कहलाती हैं, श्रीराधामाधव का स्वरूप प्रेममय है और प्रेम वाणी का विषय नहीं, अनिर्वचनीय है। गूँगे का गुड़ है, जो गुण और कामना की अपेक्षा नहीं करता, प्रतिक्षण बढ़ता रहता है। सूक्ष्मतर होने पर भी बदलता रहता है, कभी घटता नहीं है। लेकिन यह दिव्य प्रेम किसी सत्पात्र पर ही प्रकट होता है। निम्बार्क सम्प्रदाय, गौड़ीय सम्प्रदाय, शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय एवं और भी अनेक सम्प्रदायों में श्रीकिशोरी जी की अलग-अलग आराधना व उपासना की जाती है।

रास की गोपी – रासलीला में गोपियों का तृतीय स्थान है, किन्तु रासलीला का स्वरूप इन पर ही निर्भर है। सामान्य रूप से गौ-पालन करने वाली गोप जाति की देवियों को ही गोपी कहा गया है – **गां गोजातिम् पातीति गोपा जाति विशेषां तेषां स्त्रियो गोपी।** गोपांगना अर्थ के साथ गोपी शब्द का अर्थ वेद श्रुति नाड़ी और चित्तवृत्ति रूप को भी गोपी कहते हैं –

गोपी पदार्थो गोपानामंगनेति स्फुटं पुनः ।
श्रुति नाडी वृत्ति रूपे गूढार्थोऽप्यत्र बुद्ध्यताम् ।।

ये बृजांगनाएँ बहुत दिनों तक राजा कंस और उनके अनुचरों से श्रीकृष्ण के ब्रह्मस्वरूप का गोपन करती रहीं और नवनीत के लोभ से श्रीकृष्ण से नृत्य कराती रहीं, इसलिए ये गोपी नाम से विख्यात हुईं।

चित्तवृत्ति रूपी गोपियाँ – गोपियों की प्रेममयी सेवा का प्रेमपूर्वक अनुसरण करनेवाले माधव की सभी दोषों से रक्षा करने वाली या सभी दोषों से बचाने वाली चित्तवृत्तियाँ ही आत्मचिन्तकों की दृष्टि में गोपियाँ हैं।

श्रीमद्भागवत में गोपियों को चार प्रकार से स्वीकार किया गया है – श्रुतिरूपा, ऋषिरूपा, देवकन्यारूपा और राजकन्यास्वरूपा –

गोपयस्त्यतु श्रुतिज्ञेया ऋषिजा देव-कन्यकाः।
राजकन्याश्च राजेन्द्र न मनुष्याः कदाचन ।।

ये गोपियाँ सब अलग-अलग हैं। श्रुतियाँ वे हैं, जो भगवान श्रीकृष्ण के सौन्दर्य, माधुर्य, लावण्य एवं मनमोहन मनोहर माधुरी छवि का वर्णन करती हैं अथवा इस रूप में भगवान को देखती हैं। ऋषि रूपा वे देवियाँ हैं, जो ऋषियों की बेटियाँ भी हैं, स्वयं ऋषि भी हैं और त्रिकालज्ञ भी हैं, जो भगवान के ऐश्वर्य एवं माधुर्य दोनों स्वरूप की पिपासु हैं। देवकन्या देवताओं की पुत्रियाँ हैं, जो गोपजाति में उत्पन्न हुईं एवं श्रीस्वामिनी राधाजी की शरणापन्न परम प्रेयसी दासी अथवा स्वरूपभूत प्रिया-प्रीतम की काव्य-व्यूह स्वरूपा देवियाँ हैं। उस समय राज-कन्या वे देवियाँ हैं, जिन्होंने श्रीस्वामिनी जी की सेवा करके श्रीनयन-मोहन रासरासेश्वर श्रीकृष्णचन्द्र भगवान की रासलीला में प्रवेश करने की योग्यता प्राप्त कीं। इस प्रकार ये चार प्रकार की गोपियाँ हैं।

रासलीला का प्रमुख वाद्य – रासलीला का प्रमुख वाद्य मुरली, वेणु और बंशी है।

मुरली – अंगुलियों में वेश्टन लाने वाला वाद्य मुरली कहलाता है – **मुरम् अंगुलीवेस्टनम् लातीति मुरली।** अथवा श्रोताओं के दुखों को आच्छादित करने वाले स्वर समुदाय से समालिंगित वाद्य-विशेष मुरली शब्द से वाच्य है – **मुरंति वेस्टयन्ति आच्छादयन्ति श्रोत्रीणाम् दुखम् इति मुरा 'स्वरास्तेर्लीयन्ते आश्वासयन्ते या सा मुरली।'**

मुरली का स्वरूप – मुरली का स्वतन्त्र स्वरूप है – चार स्वर, चार छिद्र और पाँचवें मुख छिद्र से सम्बन्धित दो हाथ से अधिक परिमाण कोमल नाद-सम्पन्न वाद्य को

मुरली कहा जाता है –

हस्तद्वयाधिकामाने मुखरन्ध्र समन्विता ।

चतुः स्वरस्छिद्रयुक्ता मुरली चारुनादिनी ।।

गौओं को बुलाने, ले जाने और लौटाने के अवसर पर मुरली का प्रयोग श्रीकृष्ण भगवान करते हैं।

वेणु का स्वरूप – खैर, चन्दन, बाँस, लोहा, कांसा, पीतल, चाँदी, सोना आदि से निर्मित कनिष्ठिका अँगुली के बराबर मोटी, पोली, गोल, सप्त सुरों से युक्त वाद्य वेणु कहलाता है –

वैष्णवः श्वादिरोदन्तश्चान्दनो रक्तचन्दनः

आयशः कांस्यतो रौप्यो वंशः स्यात् कांचनोऽथवा ।

कनिष्ठिकांगुली विस्तार गर्भेचा सुथिरम्दधत्

अर्द्धागुलांतराणी शिव रंध्राण्यन्यानि सप्त च ।।

गोपियाँ बाल्य काल से ही श्रीकृष्ण-प्रेम पिपासु वेणु-नाद सुनने के लिए लालायित रहती हैं। गोपियों को वेणुनाद अत्यन्त प्रिय है। गोपियाँ परम प्रेमास्पद श्रीकृष्ण के सम्मुख चटकीली नटकीली सुंदर सुसज्जित होकर उपस्थित होती हैं और हमेशा वादन सुनने के लिए श्रीकृष्ण से प्रार्थना करती रहती हैं।

वंशी – मुरली, वेणु एवं वंशी इनमें वंशी का सर्वोच्च स्थान है। क्योंकि वंशी का बाँस रुद्र हैं और स्वर सरस्वती हैं – **वंशस्तु भगवान रुद्रः स्वरः साक्षात् सरस्वती।** श्रीकिशोरी जी को नित्यानन्द प्रदान करने के लिये तथा प्रमोदित करने के लिए भगवान श्रीकृष्ण बंशी बजाते हैं। वे इस बंशी के माध्यम से राधा नाम गाते रहते हैं –

श्री राधानाम् गानैकगोविन्दं वक्त्रतः ।

सरस्वती समुद्भूता पुनः स वंशिका मतः ।।

तभी तो वंशी श्रोताओं के वशीकरण का समुद्भूत मंत्र है – **श्रोत्रीन् वंशयति श्वानुकुलीकरोति स वंशी।** इसी के माध्यम से भगवान ने पूरे ब्रह्माण्ड की चर-अचर सारी प्रकृति को अपने रस में सराबोर कर दिया। इसी वंशी के द्वारा श्रीकृष्ण ने समस्त गोपियों का आवाहन करके गोपियों के हृदय में छिपे परम प्रेम को निकालने का निर्णय किया।

चीर-हरण पर एक दृष्टि – चीर-हरण का प्रसंग रासलीला में भूमिका के रूप में है। भगवान के रास रस में आत्मसात् होने के लिए गोप-कुमारियों की अनेक जन्म-जन्मान्तरों से साधना हो रही थी। उसकी सफलता की पराकाष्ठा के रूप में भगवान के द्वारा गोपियों का चीरहरण किया गया। यह बात समस्त आचार्यों के द्वारा निर्विवाद रूप से स्वीकार की गई है कि चीरहरण आवरण-भंग लीला है। कात्यायनी देवी की पूजा में गोप-बालिकाओं ने नियम-संयम का पालन किया था। 'कात्यायनी महाभागे महायोगिन्यधीश्वरी' इत्यादि मन्त्र का जो गोप-कुमारियाँ जप करती थीं, इस सम्बन्ध में यह प्रश्न उपस्थित होता है कि पाँच वर्ष की बालिकाओं के जीवन में यह भगवत् प्राप्ति के उद्देश्य से कात्यायनी की पूजा और मन्त्र-जप की प्राप्ति कहाँ से हुई और कैसे हुई? उनके जीवन में कोई प्रेरक महापुरुष अथवा सत्संग प्राप्त होने का कोई प्रसंग दिखलाई नहीं पड़ता। इससे यह स्पष्ट होता है कि इन बालिकाओं के जीवन में भगवत् प्राप्ति का संकल्प जो उदय हुआ, वह निश्चित ही पूर्व के अनेक जन्मों से चली आ रही साधना का फल था। अनेक जन्म संसिद्धि ...।

यहाँ पर भगवान श्रीकृष्ण के द्वारा उपदिष्ट साधना के स्वरूप का स्मरण रखना उपयुक्त है कि साधना करते-करते साधना की पूर्णता होने के पूर्व यदि साधना अधूरी छूट जाए, तो क्या परिणाम होगा, इसके उत्तर में भगवान कहते हैं – हे अर्जुन ! साधना अपूर्ण होने पर नष्ट नहीं होती, वह पूर्ण साधक दूसरा जन्म धारण करता है –

शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ।। (६/४१)

अर्थात् पवित्र धन वालों के यहाँ अथवा योगियों के बीच में उसका जन्म होता है और जन्म लेकर जहाँ से उसकी साधना छूटी है, वहाँ से फिर साधना का क्रम चलता है ।

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् ।।

यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरूनन्दन ।।

इससे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि परब्रह्म पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान श्रीकृष्ण को प्राप्त करने की उत्कण्ठा से कात्यायनी देवी की पूजा-अर्चना में प्रवृत्ति का कारण उनके पूर्व जन्म के संस्कार ही थे। बालिकाओं की चित्तवृत्ति भगवान श्रीकृष्ण के प्रति परिनिष्ठित थी। इसलिए भगवान श्रीकृष्ण के अनुग्रह

से उनके अन्त: में 'कात्यायनी महामाये' मंत्र भी स्वत: स्फूर्त हुआ – **सेवोन्मुखे हि जिह्वादौ स्वमेव स्फुरस्तदा ।।**

गोप-बालिकाओं की आराधना का अन्तिम चरण था, जिनमें उनकी साधना का अभीष्ट फल प्रकट हुआ। इसको प्रमाणित करते हुए स्वयं भगवान श्रीमुख से कहते हैं, **'याताबल व्रजं सिद्धा'**। भगवान के इस कथन के पूर्व एक विशेष बात प्रकट की गई कि जीव अपने यथासम्भव यथाशक्ति प्रयास से अपने को शुद्ध बनाकर परमात्मा से मिलने को तत्पर होता है। यह बात भी शास्त्र-सम्मत है कि वासना की पूर्ण निवृत्ति हुए बिना भगवत्-प्राप्ति नहीं होती। बालिकाओं ने अपनी अभीष्ट-प्राप्ति के लिये वासनाओं को उतार कर अलग कर दिया था, फिर भी जीव वासनाओं के बीज को पूर्ण रूप से भूँजने में समर्थ्य नहीं है। अत: वासनाओं की पूर्ण निवृत्ति के लिये भगवान का अनुग्रह अपेक्षित है। इसलिए भगवान श्रीकृष्ण ने अपना विरद पूर्ण किया। क्योंकि 'आश्रितजनकार्य निर्वाहकत्वं' अर्थात् जो अपने आश्रित है, निर्भर है, उसके कार्य को स्वयं पूर्ण करना, यह भगवान का विरद है। अन्तिम ढंग से इसको पूरा करने के लिये भगवान ने स्वयं गोप-बालिकाओं की वासनाओं का अपहरण किया। उनके सभी वस्त्रों को लेकर भगवान उच्च भूमि में आरूढ़ हो गये। भगवान स्वयं दिव्य हैं और दिव्य का स्पर्श प्राप्त कर अदिव्य भी दिव्य हो जाता है। अभी तक जो वसन अदिव्य थे, भगवान ने स्वयं उनको उठाकर दिव्य बना दिया। अभिप्राय यह समझिए कि विषयोन्मुख वासनाओं को भगवान ने अपने दिव्य संस्पर्श से उन्हें दिव्य भगवतोन्मुख बना दिया और उन दिव्य वसनों को बालिकाओं के प्रति समर्पित कर दिया। अब दिव्य परिधानों को धारण कर गोप-बालिकाएँ दिव्य हो गईं, 'देवो भूत्वा देवं यजेत्'। इस शास्त्रोक्त विधि के पालन करने योग्य कक्षा में जब बालिकाएँ प्रविष्ट हुईं, तब भगवान ने स्पष्ट आदेश दिया – **याताबल व्रजं सिद्धा** – अबलाओं अब तुम सिद्ध हो गईं। आगामी शारदीय पूर्णिमा को हमारा तुम्हारा पूर्ण मिलन होगा। भगवान ने अपने पूर्ण मिलने के समय को एक वर्ष के लिए कहा। गोपियों की उत्कट मिलने की आकांक्षा को जाग्रत करना, इसका लक्ष्य प्रतीत होता है।

वेदान्त सिद्धान्त के अनुसार तत्त्व साक्षात्कार के लिए वासना की पूर्ण निवृत्ति स्वीकार की गई है, किन्तु भक्ति सिद्धान्त में या भागवत धर्म में वासना की पूर्ण निवृत्ति अभीष्ट न होकर वासना का रूपान्तरण करना माना गया है।

रास किसके साथ किया? – रासलीला कोई सामान्य ग्रामीण स्त्री-पुरुष या कोई गुड्डा-गुड़ियों के बीच में खेली गई, कोई अश्लील चेष्टा नहीं है। जीवन का लक्ष्य है ब्रह्म-स्पर्श की प्राप्ति। संसार के किसी बाह्य विषय और इन्द्रियों के सम्पर्क से जब सर्वथा विमुक्ति होती है, तब ब्रह्म-संस्पर्श की प्राप्ति अथवा परमानन्द धन परात्पर पुरुषोत्तम भगवान के साथ जीव का मिलन होकर पूर्ण कृतकृत्यता होती है।

बाह्यस्पर्शेष्वक्तात्मा विदन्त्यात्मनि यत्सुखम्।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते ।। (गीता ५/२१)

भगवान श्रीकृष्ण अपने अनन्त आनन्द रूप में जीवात्मा को आत्मसात् करने के लिए रासलीला का आयोजन करते हैं। सजातीयता में ही ग्राह्य-ग्राहकता बनती है। भगवान दिव्य हैं। प्राकृत गुण धर्मों से सर्वथा असंपृक्त उनके दिव्यस्वरूप में मिलकर एक होने के लिए दिव्यता की आवश्यकता है।

न देवो देवं अर्चयेत्। देवो भूत्वा देवं यजेत् ।।

मनु महाराज कहते हैं –

महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मी तनु विधीयते ।।

जगौ कलं वाम दशां मनोहरां ..

श्रीकृष्ण ने वेणुनाद के द्वारा जिन ब्रजांगनाओं को रास-विहार के लिए आकृष्ट किया है, वे कोई साधारण ग्रामीण नारियाँ नहीं थीं, जिनका स्मरण करते हुए बार-बार उद्धव जी चरण वन्दना करते हैं –

वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः।
यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम्। (१०/४७/६३)

ब्रह्माजी भी कामना करते हैं कि ब्रजांगनाओं की चरणधूलि को प्राप्त करने की – **(१०/१४/३४)**

तद् भूरिभाग्यमिह जन्म किमप्यटव्यां
यद् गोकुलेऽपि कतमाङ्घ्रिरजोऽभिषेकम्।

बड़े-बड़े आप्तकाम पूर्णकाम योगीन्द्र मुनीन्द्र एवं देवता जिनकी चरण धूलि को प्राप्त करके स्वयं को कृतकृत्य बनाना चाहते हैं, वे ब्रज-गोपियाँ हैं, जिन्होंने ब्रह्म-संस्पर्श प्राप्त करने के लिए कोटि-कोटि जन्मों से विविध अनुष्ठान साधना की है। उनके अनुष्ठान की सिद्धि एवं पूर्णता चीरहरण के प्रसंग में हुई है। समस्त वासना रूपी वसनों को उतारकर अलग कर दिए थे, निरावरण होकर उन्होंने जीवन को शुद्ध, पवित्र, दिव्य बनाने के लिए यमुना में अवगाहन किया। यमुना जी भगवान श्रीकृष्ण के उपयोग में आने वाले विषय, वस्तु एवं व्यक्ति को शुद्ध बनाती हैं, यह कथन श्रीयमुनाजी का ही है – '**सोऽहं तद् ग्रह मार्जनी**'। यद्यपि ब्रज-गोपियों ने स्वयं को श्रीकृष्ण का उपभोग्य बनाने में कोई कमी नहीं की, फिर भी जीव के उद्गम में वासना का सम्पर्क रहने के कारण पूर्ण वासनाओं की निवृत्ति नहीं हो पाती। भगवान का विरद है – **आश्रित जनकार्य निर्वाहकत्वम्।** अपने आश्रित जनों की कार्यसिद्धि में सरलता उत्पन्न कर देना। इस दृष्टि से गोपियों के द्वारा उतार कर अलग किए हुए वासना-वसनों को अपने दिव्य कर कमलों के द्वारा भगवान श्रीकृष्ण ने अपने कन्धे पर रख लिया। सिद्धान्त है – यदि किसी लकड़ी में आग न हो, तो उसमें आग लगाने के लिए उसे प्रज्वलित काष्ठ से जोड़ देना चाहिए। भगवान श्रीकृष्ण ने अपनी दिव्यता का संचार गोपियों के वासना-वसनों में कर दिया और फिर उन वस्त्रों को गोपियों को वापस कर दिया। अब उन वस्त्रों को गोपियाँ धारण करके पूर्ण दिव्य उज्ज्वल हो गईं। भगवान ने स्पष्ट घोषित कर दिया – **याताबलं व्रजं सिद्धा मयेमा रंस्यथ क्षपा।** गोपियों अब तुम पूर्ण शुद्ध हो गई और आगामी शारदीय रात्रियों में रास-विहार के माध्यम से हमारा-तुम्हारा पूर्ण मिलन होगा और हमारी तुम्हारी ग्राह्य-ग्राहकता सम्पन्न हो गई !

गोपियों के चार स्तर – भगवान श्रीकृष्ण की रास-लीला के विषय में वंशी-ध्वनि को सुनकर गोपियाँ उन्मादिनी जैसी आतुरता से श्रीकृष्ण की ओर गईं। वे गोपियाँ नित्यसिद्धा थीं। चीर-हरण के प्रसंग में इन्हीं गोपियों से भगवान श्रीकृष्ण ने कहा था – **याताबलं व्रजं सिद्धा मयेमा रंस्यथ क्षपा। (१०/२२/२७)** इन नित्यसिद्धा गोपियों के द्वारा जो कात्यायनी देवी की पूजा-अर्चा की बात कही गई है, वह केवल व्यावहारिक आदर्श के लिये है। वस्तुतः ये नित्यसिद्ध गोपियाँ कोटि-कोटि जन्मों की साधना के द्वारा भगवान श्रीकृष्ण की नित्य स्वकीया हैं। इन गोपियों का मन-प्राण, आत्मा श्रीकृष्ण के प्रति सर्वथा समर्पित है। इसी दृष्टि को ध्यान में रखकर श्री शुकदेव जी महाराज कहते हैं –

गोविन्दापहतात मानो न निवर्तन्त गोपिका।

अर्थात् जो गोपियाँ अनेक जन्मों की साधना एवं अनुष्ठानों के द्वारा अपनी आत्मा को भगवान श्रीकृष्ण से मिलाकर एक हो चुकी हैं, उनको किसी भी प्रकार भगवान से मिलने में कोई व्यवधान समर्थ नहीं हुआ। वे सीधे जाकर भगवान श्रीकृष्ण के सम्मुख उपस्थित हो गईं। ये नित्यसिद्धा गोपियाँ थीं। किन्तु दण्डकारण्य के मुनि एवं अन्य ऋषि भगवान के द्वारा दाम्पत्य जीवन का सुख प्राप्त करना चाहते थे तथा उनकी इच्छा को पूर्ण करने का आश्वासन अगले कृष्णावतार में प्राप्त करने का वचन भी दे दिया था, वे सब गोकुल में गोपी रूप में अवतीर्ण हुए थे। वैधी साधना तो इन प्राणियों के द्वारा की गई थी, फिर भी दीर्घकालीन वैधी साधना का रागानुगा भक्ति के रूप में जो फल प्राप्त होना चाहिए था, वह अभी पूरा नहीं हुआ था। इसलिए ये गोपियाँ वेणु-वादन सुनकर भगवान की ओर अभिसारिका में प्रयुक्त होने लगीं। तब पारिवारिक जनों के द्वारा बलात् घरों में रोक दी गईं। राग-द्वेष के बीज सर्वथा पूर्ण दग्ध नहीं हुए थे, इसलिए ऐसा हुआ। भागवत का सिद्धान्त है, भगवान स्वयं कहते हैं – **अविपक्वकषायाणां दुर्दर्शोऽहं कुयोगिनाम्। (१/६/२२)** फलतः जब श्रीकृष्ण से मिलने में बाधा आने पर उनका दर्शन प्राप्त करने की उत्कट उत्कण्ठा हुई, तब ये बन्द कमरों में नेत्र बन्द करके कृष्ण का ध्यान करने लगीं। मिलन की तीव्र उत्कण्ठा के कारण विरह का तीव्र ताप प्रकट हुआ। उस ताप से उनके जो प्रतिबन्धक अशुभ कर्म और अशुभ कर्मों का फल; सब जलकर भस्म हो गये। अशुभ मिटने से शुद्ध अन्तःकरण में ध्यान और प्रगाढ़ हुआ और प्रगाढ़ ध्यान में भगवान के परमानन्द का अनुभव हुआ। इससे पूर्वजन्म के जो शुभ कर्म थे और उनका फल सुख प्राप्त करके समस्त मांगलिक कर्म और कर्मफल पूर्ण हो गये। इस प्रकार शुभाशुभ कर्मों के एवं तज्जन्य दुख-सुख के समस्त संस्कार समाप्त हो जाने से उनको एक दिव्य भावात्मक शरीर की प्राप्ति हुई, उसके द्वारा परमात्मा से मिलकर एक हो गईं। उनका त्रिगुणमय जो शरीर था, उससे तादाम्यता भंग हो गई। ○○○

प्रतिभाशाली नरेन

श्रीमती गीतांजलि मुरारी

अनुवाद – स्वामी पद्माक्षानन्द और श्रीधर कृष्ण

(यह लघु-कथा नरेन्द्रनाथ दत्त, जो बाद में स्वामी विवेकानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए, की कहानियों की एक शृंखला है। इसमें उनके बचपन की घटनाओं की प्रस्तुति है। प्रत्येक कहानी वास्तविक घटनाओं का एक काल्पनिक पुनर्लेखन है। श्रीमती गीतांजलि मुरारी द्वारा लिखित ये कहानियाँ श्रीरामकृष्ण मठ, चेन्नई द्वारा प्रकाशित अंग्रेजी पत्रिका 'वेदान्त केसरी' में लघुकथा के रूप में प्रकाशित हुई हैं। – सं.)

विद्यालय में जोर-जोर से घण्टी बजी और जैसे ही गणित के शिक्षक कक्षा से निकले, नरेन ने अपने मित्रों की ओर मुड़कर कहा, ''मैंने कल एक अद्भुत कहानी पढ़ी।''

''यह किसके बारे में है?'' हरि और शिबू सुनने के लिए उत्सुक होकर अपनी मेज पर आगे झुक गए।

नरेन ने उत्तर दिया, ''यह एक बहुत ही वीर पुलिस के बारे में है, जिसने एक भयंकर डकैत को पकड़ा। अच्छी तरह से सुनो।''

घण्टी फिर से बजी और इससे पहले कि घण्टी की आवाज धीमी पड़ती, एक दूसरे शिक्षक ने कमरे में प्रवेश किया। नरेन अपने मित्रों से फुसफुसाया, ''बाकी मैं तुमको बाद में बताऊँगा।''

मुखर्जी सर ने कहा, ''आज, हम एक पौधे के भागों का अध्ययन करेंगे, 'अपनी पाठ्यपुस्तकों के अध्याय-२ खोलो।''

''कहानी समाप्त करो,'' शिबू ने नरेन को पीछे की मेज से आग्रह किया।

''हाँ,'' बगल की मेज से हरि ने भी विनती की, ''यह इतने दिलचस्प जगह पर पहुँच गया है ...''

नरेन तेजी से बोलते हुए उनकी ओर मुड़ा, ''गाँव में हर कोई डर गया। उन्होंने वैसा ही किया, जैसा डकैत ने उन्हें बताया। उनके सारे पैसे और गहनों को गठरियों में बाँध दिया।''

''इस रेखाचित्र को देखो,'' शिक्षक ने कहा। ''यह पत्ता है, यह तना। अब हम फूल का बारीकी से अध्ययन करेंगे। ''

छात्र अपनी कॉपी में लिखने लगे, किन्तु उनका ध्यान नरेन के उत्साहित बड़बड़ाहट और ब्लैकबोर्ड के बीच भटक रहा था।

मुखर्जी सर कठोर हो गये। पेंसिल की खरोंच के साथ, वे स्पष्ट रूप से एक नरम आवाज भी सुन सकते थे। नरेन की मेज तक तेजी से चलते हुए, उन्होंने अपनी छड़ी से उसे थपथपाया, ''क्या तुमको ऐसा नहीं लगता कि तुम सभी को परेशान कर रहे हो?'' उन्होंने डाँटा, ''खड़े हो जाओ ...''

''मुझे क्षमा कीजिए, सर,'' नरेन ने खड़े होकर कहा। ''मैं''

मुखर्जी सर ने क्रोध से बीच में ही कहा, ''हो सकता है कि तुम इतने बुद्धिमान हो कि तुमको ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है। बताओ, आज हम क्या पढ़ रहे हैं?''

''एक पौधे का भाग, सर,'' नरेन ने तुरन्त उत्तर दिया।

''खाँसते हुए मुखर्जी ने कहा, ''यह बोर्ड पर लिखा है। लेकिन क्या तुम भागों के नाम बता सकते हो?'' नरेन ने अपनी उँगलियों पर गिना, ''बीज, जड़, तना, पत्ती, फूल और फल। ''

पूरी कक्षा चकित रह गयी, लड़के एक-दूसरे से बड़बड़ाते हुए बोले, ''जब वह हमसे बात करने में व्यस्त था, तो उसने शिक्षक की बात कैसे सुनी?''

"चुप" शिक्षक गरज उठे और नरेन को विस्मय भरी दृष्टि से देखते हुए, उसे बैठने के लिए कहा। "तुम," उन्होंने अचानक हरि की ओर इशारा किया, "क्या तुम भी बात कर रहे थे?"

"नहीं ...नहीं ...नहीं, सर..."

"फिर फूल के एक हिस्से का नाम बताओ..."

हरि पीला पड़ गया। "मैं ...मैं ...पता नहीं सर," वह चिल्लाया।

"मेज पर खड़े हो जाओ," मुखर्जी सर ने आदेश दिया और शिबू की ओर देखने लगे। "तुम उत्तर दो !" शिबू ने शर्म से नीचे झुकाते हुए सिर हिलाया।

"तुम भी मेज पर खड़े हो जाओ। इस कमरे से गुजरने वालों को पता चले कि तुमको तुम्हारी अनुशासनहीनता के लिए दण्डित किया गया है।"

जैसे ही शिक्षक जाने लगे, उन्होंने देखा कि नरेन अपनी मेज पर चढ़ गया। मुखर्जी ने कहा,"मैंने तुमको खड़े होने के लिए नहीं कहा।" "तुम तो ध्यान से सुन रहे थे। बल्कि ये दोनों लड़के नहीं सुन रहे थे ।"

नरेन ने सत्यनिष्ठा से कहा, "सर, मेरे कारण मेरे मित्रों को दण्डित किया गया है। मैं इन्हें एक कहानी सुना रहा था। इसलिए मुझे भी उनके साथ खड़ा होना चाहिए। "

"अगर यह सच है, तो तुम प्रश्नों के उत्तर कैसे दे सके?" मुखर्जी सर ने पूछा।

"नरेन ने कहा, "जब मैं बात कर रहा था, तब भी आपकी बात सुन रहा था। क्या मैं आपको एक फूल का भाग बताऊँ?" "बताओ।"

"पंखुड़ी, पुंकेसर, ..."

"बस हो गया," मुखर्जी ने आश्चर्यचकित होकर अपना हाथ लहराया।

"यह वास्तव में मेरी गलती है, सर," नरेन ने विनती की।

लम्बे समय तक, मुखर्जी सर ने नरेन को बड़ी गम्भीर दृष्टि से देखा और एक हल्की मुस्कान से अपने कठोर चेहरे को नरम कर दिया। "तुम बहुत प्रतिभाशाली हो नरेन ! लेकिन मैं तुम्हारे मित्रों को तभी बैठने दूँगा, जब तुम दूसरे लड़कों को फिर कभी परेशान नहीं करने का वादा करोगे।"

"मैं वादा करता हूँ सर," नरेन मुस्कराते हुए सहमत हुआ। जैसे ही शिबू और हरि अपनी सीट पर बैठे, पूरी कक्षा खुशी से झूम उठी।

*   *   *

सत्य के लिए सब कुछ बलिदान किया जा सकता है, लेकिन सत्य को किसी भी चीज के लिए बलिदान नहीं किया जा सकता है। – स्वामी विवेकानन्द

विस्मित है यह प्रश्न अभी तक...

डॉ. अर्जुन गुप्ता 'गुंजन', प्रयागराज

मृग-मरीचिका-सी है लिप्सा, इसके पीछे भागूँ।
लोभ-लालसा पूरी हो कब, रात-दिवस मैं जागूँ।।
भागदौड़ के जीवन में इच्छा रखती भरमाई ।
विस्मित है यह प्रश्न अभी तक किसने नींद चुराई?

इच्छाएं नित ठगिनी बनकर मन को खूब नचातीं ।
जीवन है यह बना तमाशा पल-पल मुझे रुलातीं।।
लोभ-मोह के मकड़-जाल से कैसे निकलूँ भाई?
विस्मित है यह प्रश्न अभी तक किसने नींद चुराई?

सदा ईश से विनती करता अभिलाषा मर्दन हो।
लालच के पीछे नहीं भागूँ नहीं नव्य नर्तन हो।।
लालायित लिप्सा को फिर अब किसने सुरा पिलाई?
विस्मित है यह प्रश्न अभी तक किसने नींद चुराई?

घोर परिश्रम किया रात-दिन, श्रम-कण खूब बहाया।
धन-दौलत से नहीं मिला सुख, कितना नाच नचाया।।
जीवन की सन्ध्या-बेला में, समझ तभी है आई।
विस्मित है यह प्रश्न अभी तक किसने नींद चुराई?

श्रीरामकृष्ण-गीता (६२)

(द्वादश अध्याय १२/१०)

स्वामी पूर्णानन्द, बेलूड़ मठ

(स्वामी पूर्णानन्द जी रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ संन्यासी हैं। उन्होंने २९ वर्ष पहले इस पावन श्रीरामकृष्ण-गीता ग्रन्थ का शुभारम्भ किया था। इसे सुनकर रामकृष्ण संघ के पूज्य वरिष्ठ संन्यासियों ने इसकी प्रशंसा की है। विवेक-ज्योति के पाठकों के लिए बंगला भाषा से इसका हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया जा रहा है। – सं.)

श्रीरामकृष्ण उवाच

अहंकारं न कुर्वीथाः कदापि धनहेतवे ।
मन्यसे चेद्धनी चाहं तदेति परिभावय ।।११७।।

– श्रीरामकृष्ण ने कहा – कभी भी धन का अहंकार नहीं करना चाहिए। यदि तुम अपने को धनी मानते हो, तो इस प्रकार विचार करो –

स्यात् पुनः धनिनश्चापि ततो महान् ततो महान् ।
डीयमानः स खद्योतः सन्ध्यासमागमात् परम् ।।११८।
ददामि जगते ज्योतिरित्यभिमन्येत तदा ।
पुनर्गताभिमानोऽभून्नक्षत्र उदिते सति ।।११९।।
नक्षत्राण्यपि चालोकं दद्मो विश्वे चराचरे ।
पुनरित्यभिमानीनि पूर्वं चन्द्रोदयात्तथा ।।१२०।।
म्लायन्त्युडुगणाः सर्वे ह्रिया चन्द्रोदये पुनः।
जगद्धसति दीप्त्या मे चन्द्रोऽपीत्यभिमन्यते ।।१२१।।
चन्द्रस्तु मलिनीभूतोऽरुणोदयात् क्रमेण सः।
कियत् परं न दृश्येत चान्तर्हितोऽनन्तरम् ।।१२२।।

– श्रीरामकृष्ण ने कहा – धनियों में उससे भी बड़े, उससे भी बड़े हैं। सन्ध्या में जब जुगनू उड़ता है, तो वह सोचता है कि मैं जगत् को प्रकाश दे रहा हूँ। किन्तु जैसे नक्षत्र का उदय होता है, उसका अहंकार चला जाता है। तब नक्षत्र सोचते हैं कि हम लोग ही चराचर विश्व को आलोकित कर रहे हैं। किन्तु जब चन्द्रोदय होता है, तब नक्षत्र लज्जित होकर म्लान हो गये। चन्द्रमा को लगा मेरे प्रकाश से ही जगत हँसता है। तभी सूर्योदय हुआ और चन्द्रमा मलिन हो गया। थोड़ी देर बाद पुनः नहीं दिखा।

धनिनो यदि मन्येरन् सततं विषयानिमान् ।
नाहंकारो भवेत्तेषां ततो धनस्य कर्हिचित् ।।१२३।।

– धनी यदि निरन्तर इन बातों का चिन्तन करें, तो उन्हें धन का अहंकार कभी नहीं होगा।

शृणूपाख्यानमेकं वै यत् कौपीनैकहेतवे ।
गुरूपदेशसंप्राप्तः कश्चित् साधक एकदा।।१२४।।
ग्रामैकस्यान्तिकं गत्वा चिकीर्षयन् साधनादिकम् ।
रचयित्वोटजं क्षुद्रं प्रान्तरे चाति निर्जने ।
साधुरुवास तन्मध्ये साधने भजने रतः।। १२५।।

– अब एक कहानी सुनो, 'एक कौपीन हेतु'। एक साधु गुरुजी का उपदेश पाकर भगवान का साधन-भजन करने के लिए किसी ग्राम के पास अत्यन्त निर्जन में एक छोटी सी कुटिया बनाकर रहने लगे और साधन-भजन करने लगे।

प्रत्यूषे तु समुत्थाय स्नानादिकं समाप्य च ।
प्रत्यहं वस्त्रकौपीने आर्द्रे विशोषणाय च ।।१२६।।
वृक्षैकोपरि संस्थाप्य तत्कुटीरसमीपतः।
साधुरनुदिनं सोऽभून्निष्क्रान्तो भैक्ष्यहेतवे ।।१२७।।

– वे प्रतिदिन प्रात:काल उठकर स्नानादि कर अपने भीगे हुए कपड़े और कौपीन को सूखने के लिये कुटिया के समीप एक पेड़ पर रखकर भिक्षा के लिये चले जाते थे।

भैक्ष्यहेतो यदा साधुः प्रातर्गृहादि विनिर्गतः।
तदानीं तस्य कौपीनं तत् मुषिकेन कर्तितम् ।।१२८।।

– साधु जब प्रात:काल भिक्षा के लिये चले जाते थे, तब उनके उस कौपीन को चूहा काट देता था।

पुनरपि स वै साधुर्गत्वा ग्रामं परेद्यवि ।
तत्र भिक्षाटनं कृत्वा कौपीनं प्राप नूतनम् ।।१२९।।

– वे साधु दूसरे दिन गाँव में जाकर पुनः नया कौपीन भिक्षा में माँगकर लाते थे।

पुनस्तदार्द्रकौपीनं गच्छत्सु च दिनेषु च ।
सोऽस्थापयत् कुटीरोर्ध्वे स्नानान्ते शोषणाय हि ।।१३०।

– कुछ दिन बाद वे साधु स्नान के बाद पुनः अपने भीगे हुए कौपीन को सूखने के लिए कुटिया के ऊपर रख दिये और पूर्ववत् भिक्षा के लिये गाँव में चले गये। **(क्रमशः)**

भजन एवं कविता

जय जय गणपति

आनन्द कुमार तिवारी ‘पौराणिक’

जय,जय, गणपति
शंकर-सुत हे गौरी-नन्दन ।
जय,जय, गणपति,जय जगबंदन।।

प्रथम पूज्य हे शोक-विनाशक ।
लम्बोदर हे, सिद्धि-विनायक।।
अष्ट-सिद्धि, नव-निधि प्रदाता ।
कष्ट-निवारक, आनन्द-दाता ।।
कपित्थ, जम्बू फल, तुम्हें समर्पण ।
जय,जय, गणपति, जय-जगबंदन।।

सुमिरन, भक्ति अनन्य होय जब ।
विद्या, बुद्धि, बल मिलहिं सुयश तब।।
नाथ! कृपा वृष्टि बरसाओ ।
प्रकटो हृदय आनन्द हर्षाओ ।।
पावन, उज्ज्वल हो तन-मन ।
जय,जय, गणपति, जय-जगबंदन ।।

जन्म के लिए मरण भी जरूरी है

पं. गिरिमोहन गुरु, नर्मदापुरम्

मिलन के लिये स्मरण भी जरूरी है,
बिरह की अनोखी जलन भी जरूरी है ।
मुझे भी एक दिन दार्शनिक ने बताया,
जन्म के लिये मरण भी जरूरी है ।।
दूर सब रोग-शोक हो जाए,
प्रकाशित मृत्युलोक हो जाए ।
अब न संसार में अँधेरा हो,
फिर से ऐसा आलोक हो जाए ।।

श्रीकृष्ण पंचक स्तोत्रम्

(तर्ज - श्रीरामचन्द्र कृपालु भज मन)

डॉ. अनिल कुमार ‘फतेहपुरी’, गयाजी, बिहार

जय कंजलोचन कृष्ण करुणासिन्धु रूप मनोहरम् ।
वनमाल-पीत-दुकूल शोभित मयूरपंख मुकुटधरम् ।।
भाल चारु लाल तिलक कपोल कंपित कुंडलम् ।
अमित छवि शोभा निरखि हर्षित सकल व्रजमंडलम् ।।
मुरली मधुर राजित अधर धारे गिरि गोवर्धनम् ।
त्रिलोक शोक-हरण परात्पर-ब्रह्म सुख-संवर्धनम् ।।
मुर-नरक-बक-अघ-पूतना-चाणूर-मुष्टिक तारकम् ।
मधुदैत्य-कालीय गर्व-मोचन कंस-कुवलय मारकम् ।
देवगण पूजित सरस्वती-शेष वंदित ईश्वरम् ।
ब्रह्मा-महेश-सुरेश सेवित कुरु कृपा परमेश्वरम् ।।

राधा दृग् में गई समाय

श्रीधर द्विवेदी, डालटनगंज, झारखण्ड

राधा दृग में गई समाय ।
सुघर कपोल मनोहर उद्धव ! खंजन नयन लजाय ।
चंपक वदन नील पट अम्बर, कंचुकि पीत लखाय ।।
कीर ठोर नासा शुचि सुन्दर, कम्बु कण्ठ उर माल ।
कटि तक वेणी सुभग भुजंगिनि, लज्जित चाल मराल ।।
पद्मगन्ध तन परिमल पूरित, लिए गन्ध बह वाय ।
मोहन छवि बरनत राधा की, बार-बार बिलखाय ।।
राधा नैनों में बसी आय ।

बुद्धिमतां वरिष्ठम्

स्वामी गुणदानन्द, रामकृष्ण मठ, नागपुर

भारतीय चिन्तन में महावीर हनुमानजी का महत्त्व केवल इस कारण नहीं कि वे महाबली हैं, बल्कि इस कारण है कि वे बुद्धिमतां वरिष्ठम् – बुद्धिमानों में सर्वश्रेष्ठ हैं – महाविवेकी हैं। बुद्धि ही सामर्थ्य को मर्यादा और जीवन को उद्देश्य प्रदान करती है। जब जीवन में शक्ति, प्रवेग और स्पर्धा एक साथ उपस्थित हों, तब यही प्रश्न उभरता है – क्या विजय केवल बाहुबल से मिलती है, या विवेक ही उसे स्थायित्व देता है? उत्तर स्पष्ट है : शक्ति तभी सार्थक है, जब वह बुद्धि के अधीन हो।

बुद्धि, नीति और धैर्य में सर्वथा सर्वश्रेष्ठ

रावण-दरबार का संवाद : जब हनुमानजी अशोकवाटिका का विध्वंस करने के बाद रावण की सभा में लाए गए, तब उन्होंने दूतधर्म का स्मरण रखते हुए स्वयं को 'रामदूत' कहा और अत्यन्त संयमित वाणी में रावण को धर्म और नीति का उपदेश दिया। रावण ने गर्व से पूछा – 'क: त्वम्? केन साहसेन मम पुरीं भग्नवान्?' (तू कौन है और किस साहस से मेरी लंका को नष्ट किया?) हनुमान का उत्तर न उग्र था, न भयभीत – 'दासोऽहं कोसलाधीशस्य रामस्य।' मैं कोसलाधिपति राम का दूत हूँ। उन्होंने पहले अपनी पहचान 'रामदूत' के रूप में दी। यह अत्यन्त सूक्ष्म कूटनीति थी। यदि वे स्वयं को 'वीर' या 'विजेता' कहते, तो संवाद युद्ध में बदल जाता। परन्तु 'दूत' कहकर उन्होंने धर्म की मर्यादा का स्मरण करा दिया – दूत का वध अधर्म है। फिर उन्होंने स्पष्ट, परन्तु संयत शब्दों में कहा – 'सीताया: अपहरणं न क्षत्रियधर्म:, किं तु अधर्मस्य पराकाष्ठा।' (सीता का अपहरण क्षत्रिय-धर्म नहीं, बल्कि अधर्म की पराकाष्ठा है।) ध्यान दीजिए – यहाँ न अपशब्द हैं, न व्यक्तिगत आक्षेप। उन्होंने रावण के अहंकार पर प्रहार किया, पर उसकी गरिमा का उपहास नहीं किया। उन्होंने चेतावनी दी, पर चुनौती नहीं उछाली। यहाँ 'बुद्धिमतां वरिष्ठम्' का सर्वोच्च रूप प्रकट होता है – प्रतिकूल परिस्थिति में भी वाणी का संयम। युवा यदि आलोचना, अपमान या विरोध के क्षण में भी सन्तुलित रहना सीख ले, तो वही उसकी वास्तविक शक्ति है। क्रोध में दिया गया उत्तर क्षणिक सन्तोष देता है; किन्तु विवेकपूर्ण उत्तर दीर्घकालिक प्रभाव उत्पन्न करता है। एक और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रसंग यह है कि हनुमानजी इन्द्रजित द्वारा प्रयोग किए गए ब्रह्मास्त्र को तोड़ सकते थे। उनके भीतर वह सामर्थ्य थी। परन्तु उन्होंने सोचा – 'यदि मैं अभी पाश में नहीं बँधा, तो मुझे रावण के समक्ष नीति-वार्ता का अवसर नहीं मिलेगा।' अत: वे ब्रह्मास्त्र की मर्यादा रखते हुए बँधे रहे और रावण की सभा में लाए गए। वह दृश्य नीति और बुद्धि की परीक्षा का था। यह आत्मसंयम का अद्वितीय उदाहरण है। सामर्थ्य होते हुए भी उसका प्रदर्शन न करना – यही 'बुद्धिमतां वरिष्ठम्' है। राक्षसराज की सभा में उपहास, क्रोध और प्रतिशोध की ज्वाला दहक रही थी। सभा में कुछ राक्षसों ने हनुमान-वध का प्रस्ताव रखा। परन्तु विभीषण ने स्मरण कराया – दूत का वध नीति-विरुद्ध है। यहाँ हनुमानजी की रणनीति सफल हुई। उन्होंने अपनी पहचान इस प्रकार स्थापित की कि शत्रु-सभा में भी धर्म का स्मरण हो गया। रावण-दरबार का यह प्रसंग हमें सिखाता है – विवेकपूर्ण उत्तर विरोधी को भी सोचने पर विवश कर देता है। युवाओं के जीवन में भी ऐसे क्षण आते हैं, जब उन्हें अपमान और आलोचना सहनी पड़ती है तथा उनके सामने कोई शक्तिशाली और अहंकारी व्यक्ति होता है। ऐसे में उनके सामने दो विकल्प होते हैं – उग्र प्रतिकार करना या संयमपूर्वक उत्तर देना। हनुमानजी ने दूसरा मार्ग चुना। उन्होंने परिस्थिति को संवाद का अवसर बनाया। प्रतिकूलता में वाणी का संयम ही वास्तविक पराक्रम है।

राम-सुग्रीव सन्धि – सूझ-बूझ : ऋष्यमूक पर्वत पर जब सुग्रीव ने दो दिव्य पुरुषों को आते देखा, तो वे

भयभीत हो उठे। उसी समय हनुमानजी ब्राह्मण-वेष धारण कर उनके समीप पहुँचे। उन्होंने न तो सीधा प्रश्न किया, न सन्देह प्रकट किया; अपितु मधुर, सुसंस्कृत-निपुण वाणी में परिचय पूछा। उनके शब्दों में न विनय का अभाव था, न सावधानी की कमी। यहाँ उनकी कूटनीतिक बुद्धि उजागर होती है – पहले विश्वास अर्जित करो, फिर उद्देश्य प्रकट करो। उनकी वाणी से प्रभावित होकर राम ने लक्ष्मण से कहा – 'एष: नूनं महाबुद्धि:' – यह अवश्य ही महान् बुद्धिमान है। हनुमान केवल दूत नहीं, सेतु-निर्माता थे। उन्होंने राम और सुग्रीव के बीच मैत्री स्थापित करवाई। उन्होंने दोनों पक्षों को समझा – एक ओर पत्नी-वियोग से व्यथित राम, दूसरी ओर राज्य-वंचित सुग्रीव। यही रणनीतिक दृष्टि थी। उन्होंने केवल परिचय नहीं कराया; उन्होंने विश्वास, लक्ष्य और सहयोग का त्रिकोण स्थापित किया। परिणामस्वरूप एक ऐसा संघ बना, जिसने अन्तत: लंका-विजय का मार्ग प्रशस्त किया। आधुनिक जीवन में भी यही सिद्धान्त लागू होता है। किसी भी साझेदारी, संगठन या सम्बन्ध की नींव विश्वास पर टिकती है। युवा यदि संवाद-कौशल और परिस्थिति-समझ विकसित करे, तो वह जटिल परिस्थितियों में भी सेतु-निर्माण कर सकता है। युवाओं के लिए यह शिक्षा है – सफलता अकेले के पराक्रम से नहीं, समन्वय से आती है। नेतृत्व का अर्थ केवल आदेश देना नहीं, उपयुक्त व्यक्तियों को एक सूत्र में बाँधना है।

लंका-दहन

अशोकवाटिका में जब दुष्टतन्त्र ने हनुमानजी का अपमान किया, तब उन्होंने उसी तन्त्र को लक्ष्य कर दहन किया। यह 'उद्देश्य-केन्द्रित शक्ति' थी, न कि जनजीवन के विनाश का अभियान। हनुमानजी ने भी यही सिद्धान्त अपनाया – जहाँ संवाद सम्भव था, वहाँ संवाद किया। जहाँ चेतावनी पर्याप्त थी, वहाँ चेतावनी दी, और जहाँ दुष्टता अडिग रही, वहाँ सीमित दण्ड दिया। उन्होंने पहले रावण की सभा में नीति का उपदेश दिया। जब वह अस्वीकार हुआ, तब ही दण्ड का आश्रय लिया। यह क्रम अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है – पहले विवेक, फिर बल। अनियन्त्रित शक्ति अराजकता को जन्म देती है; नियन्त्रित शक्ति व्यवस्था को। यही अन्तर परिपक्वता और आवेग में है। हनुमानजी ने रावण के दरबार में स्वयं को दूत के रूप में प्रस्तुत कर पहले धर्मसम्मत संवाद का मार्ग चुना। यह उनके बुद्धिबल का प्रथम चरण था – युद्ध से पूर्व नीति। जब उनका अपमान हुआ और पूँछ में अग्नि प्रज्वलित की गई, तब भी उन्होंने उस अग्नि को प्रतिशोध का साधन नहीं बनने दिया। उन्होंने लंका को पूर्णत: भस्म करने की सामर्थ्य रखते हुए भी सम्पूर्ण लंका का संहार नहीं किया; केवल सामरिक और राजकीय प्रतिष्ठानों को लक्ष्य बनाया, ताकि अधर्म को चेतावनी मिले किन्तु निरपराध जनमान्स अनावश्यक विनाश से बचा रहे। हनुमान का लंका-दहन अराजक उन्माद नहीं था। वह न क्रोध की अनियन्त्रित ज्वाला थी, न सामर्थ्य का प्रदर्शन। यदि लंका-दहन अनियन्त्रित होता, तो वह धर्मयुद्ध का आधार न बन पाता। वह संयमित और उद्देश्यपूर्ण था, इसलिए वह धर्म की विजय की भूमिका बना। यह क्रोध का संयमित रूप था – शक्ति का सर्वोच्च रूप वही है – जहाँ भावनाएँ विवेक के अधीन हों, न कि विवेक भावनाओं के अधीन – जो आवश्यक सीमा में रहकर, न्यायपूर्ण लक्ष्य के लिए और सन्तुलित साधनों से प्रयोग की जाए। यही वह आदर्श है, जो युवाशक्ति को संयम, नीति और उत्तरदायित्व के साथ आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है।

उसी प्रकार जब कोई राष्ट्र अपनी सैन्य क्षमता का उपयोग केवल आतंकवादी संरचनाओं या आक्रामक सैन्य ठिकानों तक सीमित रखता है, तो वह यह दर्शाता है कि उसका उद्देश्य अराजक विनाश नहीं, अपितु न्याय और सुरक्षा की स्थापना है। वह शक्ति के संयमित और उत्तरदायी उपयोग का उदाहरण प्रस्तुत करता है। २२ अप्रैल, २०२५ को पहलगाम में हुए आतंकवादी हमले के प्रत्युत्तर में संचालित ऑपरेशन सिन्दूर भारत की एक सटीक, सीमित और उद्देश्यपूर्ण सैन्य कार्रवाई थी। इस अभियान का मूल उद्देश्य प्रतिशोध नहीं, बल्कि आतंकवादी संरचनाओं को निष्क्रिय करना और राष्ट्रीय सुरक्षा सुनिश्चित करना था।

उपसंहार – बुद्धिमान व्यक्ति समस्या का समाधान उतनी ही शक्ति से करता है, जितनी आवश्यक हो। अनावश्यक आक्रामकता बुद्धिमत्ता नहीं, दुर्बलता, असंयम का परिचायक है। युवा के भीतर ऊर्जा, उत्साह और सामर्थ्य प्रचुर मात्रा में है; किन्तु यदि वह ऊर्जा अनियन्त्रित हो जाए, तो वह स्वयं के लिए ही बाधक बन सकती है। यदि युवा कॉरपोरेट जीवन में, सामाजिक जीवन में, पारिवारिक जीवन में – हर मतभेद को टकराव बना दे, तो वही सम्बन्ध-विच्छेद का कारण बन सकता है। यदि युवा विवेक से काम ले, तो वही मतभेद संवाद में परिवर्तित हो सकता है। युवाओं के लिए इसका गूढ़ सन्देश यह है कि ऊर्जा और महत्त्वाकांक्षा तभी सार्थक हैं, जब वे स्पष्ट लक्ष्य, आत्मसंयम और नैतिक विवेक से संचालित हों। OOO

विवेकानन्द-वन्दन

आचार्य भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश', उत्तर प्रदेश

(इस विवेकानन्द-वन्दन की रचना उत्तर प्रदेश के प्रसिद्ध साहित्यकार, माँ सरस्वती के आराधक आचार्य भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश' जी ने मेरे आग्रह पर विशेष रूप से विवेक ज्योति के पाठकों के लिए की है। मधुरेशजी ने लगभग ३० प्रसिद्ध पुस्तकों की रचना की है। विवेक ज्योति के पाठक उनसे परिचित हैं। उनकी रचनाएँ कई वर्षों से विवेक ज्योति के अतिरिक्त विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती हैं। –सं.)

।। दोहा ।।
अखिल लोक में व्याप्त है पावन कीर्ति अमन्द ।
मानवता के मान ! जय देव विवेकानन्द !!१!!
।। छन्द ।।
विशद विचार-विवेक-विभूषित वाणी विमल तुम्हारी ।
जयति विवेकानन्द ! जयति-जय नव प्रबोध-अवतारी!!१!!

जननी जनक कृतार्थ हो गये जग में जीवन-दाता,
तुमको पाकर धन्य हो गयी अपनी भारत माता,
ऐसा कौन? न जिसको पावन चरित तुम्हारा भाता,
तुम ही मानव-मानवता के नित नव भाग्य-विधाता,
मह-मह महक रही है चहुँ दिशि पुण्य-कीर्ति-फुलवारी।
जयति विवेकानन्द ! जयति जय नव प्रबोध-अवतारी !!२!!

तुमने मानव-मानवता हित मंगलमय व्रत धारा,
गुरुडम के गुरुओं पर तुमने किया प्रहार करारा,
सर्वधर्म-समवाय-सुधा की हुई प्रवाहित धारा,
सभी-सुखी-सारोग्य रहें, यह था आदर्श तुम्हारा,
सत्य सनातन पुण्य धर्म के तुम थे प्रबल पुजारी।
जयति विवेकानन्द! जयति जय नव प्रबोध अवतारी !!३!!

भौतिकता के सुख-वैभव सब तुमने जनहित त्यागे,
विश्वधर्म-सम्मेलन में भी रहे सभी से आगे,
गये शिकागो महा मुदित मन विश्व-प्रेम अनुरागे,
सुनकर विमल तुम्हारी वाणी सबके भव-भ्रम भागे,
वशीभूत हो गये वहाँ के सभी सुजन नर-नारी।
जयति विवेकानन्द ! जयति जय नव प्रबोध अवतारी !!४!!

जगमग ज्योतिर्मय जीवन की जग में ज्योति जगायी,
सबके प्रति सद्भाव-स्नेह की सच्ची लगन लगायी,
जाति-पाँति के भेद-भाव की भीषण भीति भगायी,
किया तुम्हीं ने सब धर्मों की सच्ची प्रेम-सगाई,

मानव-मानवता है तुम पर बार बार बलिहारी ।
जयति विवेकानन्द ! जयति जय नव प्रबोध-अवतारी !!५!!

सबके प्रति ज्योतिर्मय जगमग थे शुभ भाव तुम्हारे
निकट विरोधी दुस्थिति में भी नहीं कभी तुम हारे,
सर्वलोक मंगल के हित में पुण्य कर्म थे सारे
सोये भारत के भी जागे जगमग भाग्य-सितारे
तुमने अखिल विश्वमानवता की आरती उतारी।
जयति विवेकानन्द ! जयति जय नव प्रबोध-अवतारी !!६!!

परमहंस श्रीरामकृष्ण ने बहु विध तुम्हें प्रबोधा,
तुमने उनके प्रति कृतज्ञ हो सत्य धर्म को शोधा,
अखिल विश्व में पुण्य धर्म के बने धुरंधर जोधा,
मानवता के हित थे तुम ही परम प्रवीण पुरोधा,
पूरब-पश्चिम-उत्तर-दक्षिण देखी दुनिया सारी।
जयति विवेकानन्द ! जयति जय नव प्रबोध-अवतारी !!७!!

धर्म-युद्ध के अग्रदूत बन सबसे आगे आये,
विमल विवेक विचार बोध से सारे जग में छाये,
सत्य-स्नेह-सद्भाव धर्म के तुमने सुमन खिलाये,
यत्र-तत्र-सर्वत्र विश्व में अपना रंग जमाये,

देख तुम्हारे बुद्धियोग को सबकी मति-गतिहारी।
जयति विवेकानन्द ! जयति जय नव प्रबोध-अवतारी !!८!!

अखिल विश्व में बजा तुम्हारे ज्ञानयोग का डंका,
जली तुम्हारे सत्प्रयास से मत-मजहब की लंका,
समाधान पा गयी धर्म के असद्भाव की शंका,
मानवता के मतवाले तुम धीर-वीर रणबंका,
सत्य सनातन-संस्कृति के थे तुम उदग्र अधिकारी
जयति विवेकानन्द ! जयति जय नव प्रबोध-अवतारी !!९!!

सर्वधर्म-सद्भाव-ध्वजा के तुम थे धारक नेता,
मंगलमय मानवता-पथ के तुम थे प्रबल प्रचेता,
ज्ञानयोग और कर्मयोग के थे अभिनव अध्येता,
सत्य-धर्म-अध्यात्मलोक के तुम थे विमल विजेता,
अहा ! तुम्हारी वाक्-कला पर सभी लोक बलिहारी ।
जयति विवेकानन्द ! जयति जय नव प्रबोध-अवतारी !!१०!!

सारे जग को सत्य धर्म का अमृत मधुर पिलाया,
मानव-मन में सत्य-प्रेम का सुरभित सुमन खिलाया,
जो थे निरा अशिक्षित-वंचित, उनको स्वत्व दिलाया,
जाति-पाँति के भेदभाव का लौह-स्तम्भ हिलाया,
ब्रह्मचर्य के महाधनी थे तुम अखण्ड बलधारी ।
जयति विवेकानन्द ! जयति जय नव प्रबोध-अवतारी !!११!!

तुमने अखिल लोक में पावन पुण्यश्लोक पसारा,
व्याप रहा है सारे जग में शुभ सन्देश तुम्हारा,
हारा नहीं कभी वह जिसको तुमने दिया सहारा,
जिसने तुम्हें नहीं स्वीकारा, वह पागल बेचारा,
तुमने वसुधा पर सुरपुर की स्नेहिल सुधा उतारी ।
जयति विवेकानन्द ! जयति जय नव प्रबोध-अवतारी !!१२!!

नव जीवन के शुभ प्रकाश को लोग तुम्हीं से पाते,
विश्वप्रेम के भावदीप को उर में सभी जगाते,
हैं कृतज्ञ सब लोग तुम्हारे गुण-गौरव को गाते,
वचन तुम्हारे सब के मन से भव-भ्रम-भीति भगाते,
भौतिक तन में उन्नत मन से तुम हो शुभ-संचारी।
जयति विवेकानन्द ! जयति जय नव प्रबोध-अवतारी !!१३!!

देव ! तुम्हारे आदर्शों पर यदि यह लोक चलेगा,
सद्भावों के सुमन खिलेंगे वैर-विरोध दलेगा,
कोई यदि न कदापि किसी को करके पाप छलेगा,
तो 'मधुरेश' अवश्य एक दिन सच्चा धर्म फलेगा,
जगमग जीवन-ज्योति सभी की जग में होगी न्यारी ।
जयति विवेकानन्द ! जयति जय नव प्रबोध-अवतारी !!१४!!

हे युगनायक, बोध विधायक सब विधि लायक स्वामी
देव विवेकानन्द ! तुम्हीं हो धर्म धुरंधर नामी ।
जो कृतज्ञ, वे सभी तुम्हारे वशीभूत अनुगामी,
हे निर्मल मानवता-पोषक ! नित्य नमामि-नमामी !!१५!!

।। दोहा ।।
जो सदैव सादर करे यह मंगलमय पाठ ।
उसके जीवन में सभी सजते सुख के ठाठ।।

ॐ शान्तिः ! ॐ शान्तिः ! ॐ शान्तिः !

।। आरती ।।

हे देव विवेकानन्द ! तुम्हारी जय हो।
हे ऋषिकुल-कैरव चन्द ! तुम्हारी जय हो।।
तुम विश्वधर्म सम्मेलन के उन्नायक,
तुम सदा सत्य-शिव-सुन्दरलोक-विधायक,
हे काव्य-कला-रस-छन्द ! तुम्हारी जय हो।
हे देव विवेकानन्द! तुम्हारी जय हो।

तुमने भारत का गौरव-ध्वज फहराया,
तुमने सुख-सागर लहर-लहर लहराया,
हे महिमा महा आनन्द ! तुम्हारी जय हो ।
हे देव विवेकानन्द! तुम्हारी जय हो।

हे योगिवर्य ! हे भूमा-लोक-विहारी,
तुम शुभालोक के अधुनातन अवतारी,
हे मानवता-रस-कन्द ! तुम्हारी जय हो ।
हे देव विवेकानन्द! तुम्हारी जय हो ।

तुम रामकृष्ण के शुभ संकल्प-प्रचारक,
तुम सत्य सनातन धर्म ध्वजा के धारक,
हे दिव्य भाव-सुस्पन्द ! तुम्हारी जय हो ।
हे देव विवेकानन्द! तुम्हारी जय हो।।

व्रज में श्रीमाँ सारदा

स्वामी ओजोमयानन्द

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वृन्दावन

(गतांक से आगे)

ब्रज मंडल दर्शन – "... एक बार श्रीमाँ ने अपने संगियों के साथ वृन्दावन की परिक्रमा भी की। उन्हें इसमें पन्द्रह दिन से अधिक समय लगा। परिक्रमा के समय लगता था, मानो वे व्रज के सभी स्थानों को बड़े ध्यान से देखती हुई जा रही हैं। कहीं-कहीं वे अचानक खड़ी हो जातीं। पूछने पर कहतीं, 'कुछ नहीं, चलो।' उनकी संगिनी योगीन-माँ आदि को स्पष्ट बोध होता कि श्रीमाँ भावस्थ होकर जा रही हैं और उन्हें दर्शन आदि भी हो रहे हैं। अतएव उन्हें इस बारे में सविशेष जानने की अभिलाषा होती। किन्तु माँ इस जिज्ञासा के उत्तर में यही कहतीं, 'चलो, कुछ नहीं।'[२९] वृन्दावन की परिक्रमा में लगभग दो-ढाई घण्टे लगते हैं, जबकि ब्रज की परिक्रमा में (जो ८४ कोस की परिक्रमा है), लगभग पन्द्रह दिन लग जाते हैं। अत: यहाँ वृन्दावन परिक्रमा का तात्पर्य ब्रज-परिक्रमा ही लेना चाहिये। पन्द्रह दिन से अधिक समय लगने का अर्थ भी यही है कि माँ ने पैदल ही ब्रज-परिक्रमा पूरी की होगी। ब्रह्मचारी अक्षयचैतन्य रचित श्रीमाँ की जीवनी के अनुसार 'श्रीमाँ एक वर्ष वृन्दावन में रहीं और एक बार पंचकोशी परिक्रमा कीं।' "[३०]

राधाकुण्ड-श्यामकुण्ड – चूँकि श्रीमाँ सारदा ने ब्रज परिक्रमा की थी, अत: यह स्पष्ट है कि उन्होंने गोवर्धन जी का दर्शन भी किया था, जो राधाकुण्ड-श्यामकुण्ड के समीप ही स्थित है। श्रीमाँ ने राधाकुण्ड-श्यामकुण्ड के दर्शन किये थे, इसके प्रमाण मिलते हैं। श्रीमाँ श्यामकुण्ड में स्नान कीं, लेकिन वे राधाकुण्ड के जल में नहीं उतरीं। उन्होंने जल को अपने हाथ से सिर पर छिड़क लिया। जब एक जिज्ञासु भक्त ने इसका कारण पूछा, तो श्रीमाँ ने कहा, "अरे बाबा, श्रीराधा चिन्मयी हैं, मैं राधाकुण्ड में प्रवेश नहीं कर सकती।" किसी भक्तिमती स्त्री ने आश्चर्य से कहा, यह कैसी बात है माँ? श्यामकुण्ड में तुमने नि:संकोच पैर रखा, और जितनी बाधाएं, वे राधाकुण्ड के लिए हैं ! उत्तर में श्रीमाँ ने मन्द मुस्कान के साथ कहा, "कुछ बाधा है, मैं राधाकुण्ड में नहीं उतरूँगी।"[३१]

रावल – रावल श्रीराधारानी का जन्म स्थान है। यह व्रजभूमि का पवित्र स्थान है। जैसा कि हम उल्लेख कर चुके हैं कि एक दिन स्वामी योगानन्द जी रावल में राधारानी के प्राकट्य स्थल का दर्शन करने गये, तो उन्हें गौरी माँ का पता ज्ञात हुआ। तत्पश्चात् श्रीमाँ उन्हें लेने के लिए वहाँ गयीं। इस प्रकार श्रीमाँ रावल दर्शन भी कर आयी थीं।

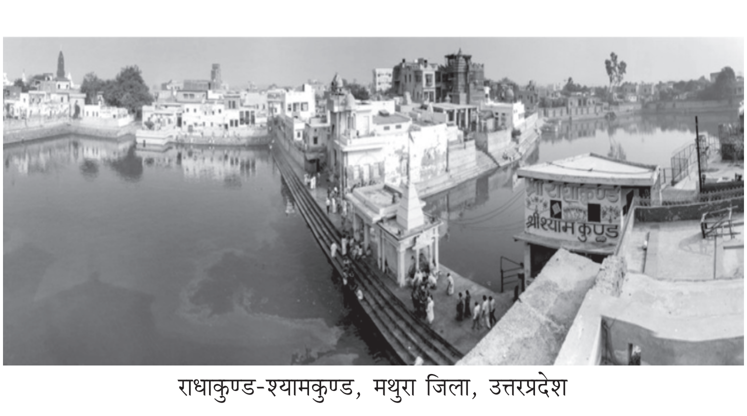

राधाकुण्ड-श्यामकुण्ड, मथुरा जिला, उत्तरप्रदेश

वृन्दावन के तीर्थ दर्शन

निधुबन – 'कुंजों में निधुबन श्रीरामकृष्ण को प्रिय था। इसी निधिवन में महान भक्त हरिदास गोस्वामी के समक्ष बाँके बिहारी प्रकट हुए थे। इसी स्थान पर वरिष्ठ तापसी गंगामायी को श्रीरामकृष्ण में श्रीराधा के स्वरूप का अनुभव हुआ और जब भी वे उन्हें देखतीं, तो 'मेरी लाली, मेरी लाली' कहकर प्रेम

में विह्वल हो जाती थीं। वे उन्हें कुछ दिनों के लिए अपने आश्रम में भी ले आयीं थी। राधाकृष्ण के चरण-स्पर्श और

निधुबन, वृन्दावन

लीला-स्थली से ब्रजमण्डल का कण-कण पवित्र है। निधुबन की रज श्रीमाँ के लिए विशेष प्रिय और पवित्र थी। वहाँ वे ठाकुर की निकटता का अनुभव करतीं और लीन होकर बैठी रहती थीं। बहुत समय व्यतीत हो जाने पर, साथियों के अनुरोध पर निरुपाय होकर निवास पर लौट आतीं। ठाकुर की स्मृतियाँ वृन्दावन की भावमाधुरी से जुड़ी हुई हैं। स्त्री-भक्त कहती थीं, 'माँ, ठाकुर की भाँति तुम्हें भी मुहुर्मुहुः भावसमाधि होने लगी है।'[३२]

बाँकेबिहारी – सन्त श्रीहरिदास स्वामी विषय-उदासीन वैष्णव थे। उनके भजन-कीर्तन से प्रसन्न हो निधिवन से श्रीबाँके बिहारीजी प्रकट हुये थे। जब मुस्लिम आक्रान्ताओं के उत्पात की आशंका से अनेकों विग्रह अन्य स्थानों में स्थानान्तरित हुए, उस समय श्रीबाँके विहारी जी यहाँ से स्थानान्तरित नहीं हुए।

'बहुत समय पूर्व, मथुरानाथ विश्वास के आग्रह पर ठाकुर ने काशी-वृन्दावन जैसे तीर्थों का भ्रमण किया था। बाँके बिहारी का मन्दिर उन्हें बहुत प्रिय था। वे इस स्थान पर विग्रह-दर्शन करते हुए समाधिस्थ हो गए थे। इसीलिये श्रीमाँ का बाँके बिहारी के प्रति विशेष आकर्षण था। वे बड़ी तन्मयता से विग्रह का दर्शन करती थीं। कभी-कभी उन्हें ऐसा लगता था कि ठाकुर भी उनके निकट रहकर दर्शन कर रहे हैं, कभी-कभी उन्हें विग्रह के सिंहासन पर ठाकुर की मूर्ति देखकर भावावेश भी हो जाता था।'[३३]

'एक बार माँ कहती हैं, 'जब मैं वृन्दावन में थी, तब बाँकेबिहारी के दर्शन कर उनसे कहती, 'तुम्हारा रूप टेढ़ा है, पर मन सीधा है। मेरे मन के घुमाव को सीधा कर दो।' देखो, लोगों के हजारों उपकार कर दो, किन्तु यदि थोड़ी सी गलती हो जाए, तो तुरन्त उसका मुँह टेढ़ा हो जाएगा। लोग केवल दोष ही देखते हैं, गुण देखने वाले कितने हैं? गुण ही देखना चाहिए।''[३४]

जननी (श्रीमाँ की माता) श्यामा सुन्दरी ने एक बार अपनी बेटी से कहा, सारू, तुम्हारे बहुत शिष्य हैं, तुझे तीर्थ-यात्रा आदि करा देंगे। पर माँ, तेरे बिना मेरा कौन है? मेरी बहुत इच्छा है कि तेरे साथ एक बार काशी-वृन्दावन घूम आऊँ। बेटी ने स्वीकृति दे दी। इस बार १३०१ (बांग्ला वर्ष) के उत्तरार्ध में श्रीमाँ सारदा ने अपनी माँ और भाइयों के साथ तीर्थयात्रा की। स्वामी योगानन्द जी और दो या तीन अन्य लोग भी साथ गये।[३५] पाठकों की सुविधा के लिये हम श्रीमाँ सारदा देवी को संक्षेप में श्रीमाँ और उनकी माता श्यामासुन्दरी देवी को जननी सम्बोधित करेंगे।

श्रीमाँ की द्वितीय वृन्दावन-यात्रा के समय ''एक दिन बाँके बिहारी जी के मन्दिर में श्रीमाँ ने जननी से कहा, आपके दामाद इसी ठाकुर के दर्शन करके समाधिस्थ हो गये थे। तब श्यामासुन्दरी ने दामाद की ओर से प्रणाम किया। जननी के मन में आये ऐसे परिवर्तन को, श्रीमाँ बाद में कहती थीं, ''मेरी माँ ने किसी समय जिस दामाद की समालोचनाएं की थी, लेकिन बाद में, उसने उससे कहीं अधिक प्रशंसा की।''[३६]

''बिहारीजी के सिंहासन के सामने पर्दा लटका हुआ रहता है। सेवक लोग क्षणभर के लिए इसे हटाते हैं, तो प्रभुजी का चेहरा दिखाई देता है, क्षणभर के बाद वे इसे फिर से खींच देते हैं, फिर प्रभुजी दिखाई नहीं देते हैं। यह देखकर श्यामासुन्दरी को आश्चर्य हुआ। उन्होंने कहा, सारदा, ये कैसे ठाकुर हैं? किसी देवता के सामने कहीं भी इस प्रकार पर्दा नहीं खींचा जाता। क्या बात है, कहो तो?''

श्रीमाँ ने उत्तर दिया – ''इसे यहाँ झाँकी दर्शन कहा जाता है। इसकी एक अद्भुत कहानी है। एक बार एक

ब्रजबाला बिहारी जी के दर्शन करने आई। भगवान की सुन्दरता देखकर वह भावस्थ हो गयी। उसने बहुत व्याकुल होकर प्रार्थना की और उन्हें अपने घर बुलाया। उसने कहा – 'मेरे साथ आओ।' भक्तवत्सल का हृदय प्रेम की पुकार से व्याकुल हो गया। बिहारी जी उस भक्तिमती की कुटिया में चले गये। दिन में जब सेवक मन्दिर का दरवाजा खोलकर देखते हैं, तो सिंहासन खाली है, देवता अदृश्य है। घर-घर में खोजबीन होने लगी। लोग घाट, बाट, मैदान सब ओर दौड़ पड़े। अन्ततः वे जाकर ब्रजबाला के आँगन में पहुँचे। बिहारी जी ने बड़ी सन्तुष्टि के साथ उसके हाथ का भोजन ग्रहण किया, इस बार ब्रजबाला उन्हें बड़े ध्यान से आचमन करा रही थी। तभी उन लोगों ने एक क्रूर डाकू की भाँति बिहारी जी को छीन लिया। ब्रजबाला भूमि पर गिर पड़ी, मानो विरह-वेदना से विदीर्ण हो गई हो। तब से बिहारी जी को लम्बे समय तक किसी को दर्शन करने नहीं दिया जाता है कि कहीं वे फिर से किसी के आकर्षण से चले न जाएं। इसलिये ठाकुर अब मन्दिर में इसी प्रकार भक्तों के साथ लुका-छिपी खेलते रहते हैं।[३७]

यमुनाजी – यमुनाजी गोपियों, साधकों, वैष्णवों और भक्तों के लिए सदैव आकर्षण का केन्द्र रही हैं। स्वामी अद्भुतानन्द जी महाराज अपनी स्मृति में कहते हैं, 'वृन्दावन में माताजी और लक्ष्मी दीदी किसी किसी दिन योगीन भाई को और किसी किसी दिन मुझे साथ लेकर यमुना तट पर टहलने जाया करती थीं।[३८] श्रीमाँ का यमुनाजी के तट पर जाना स्वाभाविक ही था और भक्तों का यह भाव जान लेने के पश्चात् उनका श्रीमाँ के काला बाबू कुंज में न मिलने पर यमुनाजी के तट पर खोज करना भी स्वाभाविक हो गया था। 'धीरे-धीरे उन्हें वृन्दावन के कई मार्ग ज्ञात हो गये। कभी-कभी वे दूसरों की जानकारी के बिना भी कालाबाबू कुंज से बाहर चली जाती थीं। खोज की व्याकुलता में उनका मन यमुना के तट पर, देवताओं के मन्दिरों में, राधा गोविन्द के लीलाकुंज में भटकता रहता। कभी-कभी वे यमुना के तट पर बैठकर जप करतीं और घंटों पर घंटे बीत जाते। जब सेवकों को उनकी अनुपस्थिति ज्ञात होती, तो चिन्ताग्रस्त होकर उन्हें इधर-उधर खोजते।''[३९] 'माँ की बातें' ग्रन्थ में भी हमें ऐसा उल्लेख मिलता है, 'वृन्दावन में कई बार माँ के शरीर में ठाकुर का आवेश हो जाता था। भावावेश में कभी कभी वे एकाकी बालुकाराशि को पार करके यमुना तक चली जातीं। संगी लोग उन्हें न पाकर ढूँढते हुए वहाँ जाकर उन्हें वापस ले आते।'[४०]

वृन्दावन के दूसरे प्रवास के समय ''एक दिन यमुना में स्नान करते समय श्रीमाँ भावाविष्ट हो गयीं और जल में ध्यानस्थ हो गयीं। यमुना का जल उन्हें कृष्ण-प्रेम की धारा प्रतीत होने लगा, मानो उसमें माँ यशोदा का नीलमणि छिपा हुआ है। जल से वे उठती ही नहीं। अन्ततः श्यामासुन्दरी पुत्री को पकड़कर किनारे ले आयीं।[४१] इस प्रकार की विभिन्न घटनाओं से श्रीमाँ का यमुनाजी के प्रति अटूट आकर्षण देखा जाता है।

वंशीवट – जैसा कि हम उल्लेख कर चुके हैं कि वृन्दावन की पहली यात्रा के समय श्रीमाँ का मन विरह वेदना से व्याकुल रहा करता था। अतः उस समय वे वंशीवट जाकर उसी भाव में डूब जाया करती थीं। 'वंशीवट कालाबाबू कुंज के बहुत निकट है। कई बार माँ वंशीवट जाकर अकेली बैठी रहती थीं। मन उस द्वापरयुग में चला जाता था, न जाने कितनी छवियाँ मन में उदित होती थीं – यही वह वंशीवट है, जिस पर ब्रजविहारी श्रीकृष्ण भावपूर्ण बंशी बजाते थे। राधारानी, जो शृंगारवट की छाया में बैठकर चोटी बनाने में लगी रहती थीं, वे वंशी की ध्वनि को सुनकर व्याकुल हो दौड़कर आती थीं। इस स्थान पर श्रीकृष्ण ने राधारानी के साथ रासलीला की थी, ब्रजबालाओं ने नृत्य-गीत किया था, जिसे देखकर ब्रजगोपी के रूप में महादेव धन्य हो गये थे। यह स्थान अत्यन्त पवित्र है।

एक बार की बात है, श्रीमाँ सारदा वंशीवट के नीचे बैठी हुई थीं और सुदूर अतीत के चित्रों का चिन्तन कर रही थीं। यमुना तट पर एक सुंदर कुंज-वन था, वे भी ब्रजबालाओं के साथ, बंशी के मधुर संगीत से आकर्षित हो उपस्थित हुईं। किसी समय उन्हें ब्रजविहारी भगवान कृष्ण मिले, लेकिन श्रीराधा के दर्शन नहीं हो सके। इसके बाद उन्हें और कुछ भी याद नहीं रहा। जब बाह्य चेतना लौटी, तो ब्रजबिहारी अन्तर्धान हो गये थे। वंशीवट में वे अकेले थीं और विरह वेदना से व्याकुल होकर भूमि पर लोटते हुए रोने लगीं। वे पुनः बाह्य चेतना शून्य हो गयीं।

काली दासी श्रीमाँ को बहुत देर तक आवास में अनुपस्थित पाकर उन्हें खोजने बाहर निकलीं। सौभाग्य से जब वे पहले वंशीवट आईं और उनसे भेंट हुई, तब भी

वे भूमि पर बाह्यचेतनाशून्य स्थिति में थीं। दोनों नेत्र कभी खुलते, कभी बन्द होते, आँसुओं और रज-राशि से मिश्रित होकर उनके शरीर ने श्रीधाम वृन्दावन में एक विचित्र रूप धारण कर लिया था। वे नि:शब्द थीं। इस स्थिति को देखकर चिन्तित काली दासी ने माँ के चेहरे पर पानी के छींटे दिये और 'राधेश्याम' नाम का जाप करती रहीं। तुरन्त अन्य कुछ लोग भी आ गए और श्रीमाँ को संतपर्णे कुंज ले जाया गया। इस दिन उनकी सामान्य चेतना लौटने में बहुत देर हुई थी।'[४२]

अपनी द्वितीय यात्रा के समय एक दिन बंशीवट की महिमा का वर्णन करते हुए श्रीमाँ ने वहाँ के रज को जननी के मस्तक पर लगाते हुए कहा, "जब मैं यहाँ आती हूँ, तो मुझे गोपियों के नूपुरों की झंकार सुनाई देती है, वे आज भी गोविन्द के दर्शन करने आती हैं। यहाँ आने से मुझे बहुत आनन्द होता है।"[४३]

श्रीराधारमण – श्रीराधारमण जी का मन्दिर वृन्दावन के सप्त देवालयों में से एक है। श्रीराधारमण जी उन विग्रहों में से हैं, जो कि अब भी श्रीवृन्दावन धाम में स्थित हैं। ऐसा कहा जाता है कि औरंगजेब की बर्बरताओं से दूर रखने के लिए अन्य विग्रहों को तो वृन्दावन से विभिन्न स्थानों पर भेज दिया गया था, लेकिन श्रीराधारमण जी कभी भी वृन्दावन छोड़ कर नहीं गए और १५३२ से यहीं पर विराजमान हैं।

श्रीमाँ सारदा देवी प्राय: ही राधारमण मन्दिर जाया करती थीं। एक दिन की घटना का उल्लेख करते हुए योगेन माँ कहती हैं, 'उस समय माँ छोटी बच्ची के समान बातें करती थीं। प्रारम्भ में माँ ठाकुर के लिए बहुत रोई थीं, लेकिन बाद में ठाकुर ने माँ को आनन्द से परिपूर्ण कर दिया था। उस समय माँ को देखने से लगता था, मानो वे एक छोटी सी बच्ची हों। रोज घूम-घूम कर विभिन्न स्थानों पर देव-दर्शन को जाती थीं। एक दिन राधारमण का दर्शन करने गयीं, तो माँ ने देखा – मानो नवगोपाल बाबू की पत्नी राधारमण के समीप खड़ी होकर पंखा डुला रही हैं। यह देखकर माँ ने लौटकर मुझसे कहा, 'योगेन, नवगोपाल का परिवार बहुत शुद्ध है। मैंने इस प्रकार देखा।'[४४]

ब्रह्मचारी अक्षयचैतन्य रचित श्रीमाँ की जीवनी के अनुसार, 'श्रीमाँ ने राधारमण से प्रार्थना की कि वे उनकी सारी दोषदृष्टि दूर कर दें। अगर किसी के बुरे चरित्र के विषय में उनसे कहा जाता, तो वे नाराज हो जाती थीं।[४५]

श्रीगोविन्दजी – गोविन्द देव जी का मन्दिर वृन्दावन के सबसे पुराने मन्दिरों में से एक है। वैष्णव सम्प्रदाय के इस मंदिर का निर्माण राजा मानसिंह ने सन् १५९० में कराया था। निर्माण के समय मन्दिर ७ मंजिला हुआ करता था। तत्कालीन मुगल आक्रान्ता औरंगजेब के मन में हिन्दुओं के प्रति अपनी घृणा के चलते उसने अन्तत: एक दिन अपनी सेना को इस गोविन्द देव मन्दिर को तोड़ने का आदेश दे दिया। मंदिर के पुजारी को औरंगजेब की इस योजना का भान हो गया और उन्होंने मन्दिर में स्थापित भगवान गोविन्द जी की पुरातन प्रतिमा को वृन्दावन से बहुत दूर जयपुर भेज दिया, जहाँ उनकी स्थापना कनक बाग में स्थित गोविन्द देव मन्दिर में हुई। औरंगजेब की सेना ४ मंजिल ही गिरा सकी। इसके बाद औरंगजेब ने मन्दिर को खण्डित और अपवित्र करने के प्रयास में यहाँ नमाज पढ़ी और शेष बचे मन्दिर पर मस्जिद की संरचनाएँ और गुंबद आदि बनवा दिए। हालाँकि १८७३ तक मंदिर उसी अवस्था में रहा, जिस अवस्था में औरंगजेब द्वारा इसे छोड़ा गया था, लेकिन इसके बाद मन्दिर का जीर्णोद्धार प्रारम्भ हुआ और मन्दिर के साथ छेड़छाड़ करते हुए औरंगजेब ने जो निर्माण किया था, उसे हटा दिया गया और मंदिर का पुनर्निर्माण किया गया। इसी मंदिर के सन्दर्भ में श्रीमाँ से स्वामी अरूपानन्दजी प्रश्न करते हैं कि मुसलमानों ने कितने मन्दिर, देवी-देवताओं की कितनी मूर्तियाँ खण्डित कर दीं। किसी मूर्ति की नाक तोड़ डाली, तो किसी के कान। तब माँ ने कहा था, 'इन मुस्लिम आक्रान्ताओं के डर से श्रीगोविन्दजी की मूर्ति को वृन्दावन से जयपुर ले गये। इससे वृन्दावन के पुजारी क्षुब्ध हो गये और विग्रह को वापस माँगने लगे। अन्त में उन्हें दैवी वाणी सुनाई पड़ी – 'मूर्ति गयी है, मैं नहीं गया हूँ। दूसरी मूर्ति तैयार कर लो, मैं उसमें विराजमान हो जाऊँगा!"[४६]

किसी समय स्वामी अरूपानन्द जी ने मुसलमानों के राज्यकाल में भारत के विभिन्न स्थानों में मन्दिरों के ध्वंस का उल्लेख करके पूछा, 'यह जो इतना अत्याचार हुआ, तो इसका उन्होंने (ईश्वर ने) क्या किया?'

माँ – उनका धीरज अनन्त है। यह जो दिन-रात उनके सिर पर लोटा-पर लोटा ढाले जा रहे हैं, उससे उनका क्या सम्बन्ध है? फिर यदि सूखे कपड़े से ढककर उनकी पूजा करो, तो उससे भी उनका क्या? उनका धैर्य असीम है।[४७]

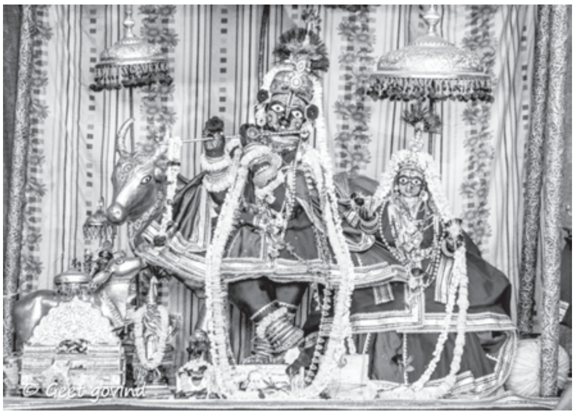

गोविन्दजी के प्रति श्रीमाँ की अत्यन्त श्रद्धा थी। एक बार जब वे जयपुर गयी थीं, तब उन्होंने गोविन्दजी के दर्शन किये थे। 'वृन्दावन-वास के प्राय: अन्त में श्रीमाँ हरिद्वार दर्शन कर आई थीं। इसके बाद श्रीमाँ अपने साथियों के साथ जयपुर गईं। वहाँ सब लोग श्रीगोविन्दजी के दर्शनों के पश्चात् अन्य देवताओं के दर्शन करने लगे।[४८]

बातचीत के प्रसंग में वृन्दावन के इसी गोविन्दजी के एक पुजारी की एक घटना के सम्बन्ध में श्रीमाँ ने कहा, ''मन में कामना रहने से जीव का आवागमन बन्द नहीं होता। कामना के कारण ही जीव इस देह से उस देह में जाता है। सन्देश (मिठाई) खाने की थोड़ी-सी इच्छा बाकी रहने से भी पुनर्जन्म होता है। इसीलिए मठ में इतने प्रकार की चीजें लायी जाती हैं। कामना एक सूक्ष्म बीज के समान है। जिस प्रकार सरसों के दाने के आकार के एक वट-बीज से विशाल वटवृक्ष होता है, उसी प्रकार कामना के रहने से पुनर्जन्म होगा ही। यह मानो जीवात्मा को एक गिलाफ से निकालकर दूसरे गिलाफ में घुसाने के समान है। पूरी तरह से कामनाशून्य एक-दो व्यक्ति ही हो पाते हैं। यदि पूर्वजन्म के सत्कर्म बाकी हों, तो कामना के कारण पुनर्जन्म होने पर भी आध्यात्मिक चेतना पूरी तरह लुप्त नहीं होती। वृन्दावन में गोविन्दजी का एक पुजारी भगवान् के भोग को ले जाकर अपनी रखैल को खिलाता था। मरने के बाद इस पाप के कारण उसे प्रेतयोनि प्राप्त हुई। चूँकि उसने देव-सेवा की थी, इसलिए सत्कर्म के फलस्वरूप वह एक दिन सबके सामने सशरीर उपस्थित हुआ। अपने सत्कर्मों के कारण ही उसका इस प्रकार प्रकट होना सम्भव हुआ। उसने सबको अपनी अधोगति का कारण बतलाया और उनसे कहा, 'तुम लोग मेरे उद्धार के लिए भगवान के महोत्सव-कीर्तन आदि का आयोजन करो। उसी से मेरा उद्धार होगा।'

स्वामी अरूपानन्द – महोत्सव-कीर्तन आदि से क्या उद्धार होता है?

माँ – हाँ, वैष्णवों का उसी से होता है। वे लोग श्राद्धादि नहीं करते।'[४९] **(क्रमश:)**

सन्दर्भ-सूत्र – २९. श्रीमाँ सारदा देवी ११९-१२० **३०.** श्रीश्रीसारदा देवी – ब्रह्मचारी अक्षयचैतन्य, पृ.६३ **३१.** सारदा रामकृष्ण,पृ. १२८ **३२.** वही, पृ.१२४ **३३.** वही, पृ. १२३ **३४.** श्रीमाँ सारदा देवी, पृ. २८७ **३५.** सारदा रामकृष्ण, पृ. १४० **३६.** वही, पृ. १४२-१४३ **३७.** वही, पृ. १४२-१४३ **३८.** अद्भुत सन्त अद्भुतानन्द १७४ **३९.** सारदा-रामकृष्ण १२४ **४०.** माँ की बातें, पृ. २०-२१ **४१.** सारदा-रामकृष्ण १४२-१४३ **४२.** वही, पृ. १२४-२५ **४३.** वही, पृ. १४२-१४३ **४४.** माँ की बातें, पृ.३५१-५३ **४५.** श्रीश्रीसारदा देवी - ब्रह्मचारी अक्षयचैतन्य, पृ.६३ **४६.** माँ की बातें, पृ.९९ **४७.** वही, पृ. ११६ **४८.** श्रीमाँ सारदा देवी, पृ. १२०-१२१ **४९.** माँ की बातें, पृ. ५८-५९

कविता

चरण कमल नयनन उर लाई

स्वामी मैथिलीशरण, ऋषिकेश

चरण कमल नयनन उर लाई,
घन सम देह पीत पीताम्बर नयनन में दुति की तरुनाई।।
श्रवणन में कुण्डल लटकत जिमि तरु रसाल की ऋतु गहराई।
सिर ललाट की शोभा ऐसी चलनिधि की मरुभूमि सुहाई ।।
होंठ निकट जब दूर होत हैं, प्रिया पीय की प्रीति दिखाई।
रसना निकट रहत मुख ऐसे भक्तन के मन की ललचाई ।।
दंत पंक्ति जब हँसत लसत है, निशा भई तारन समुदाई ।
ध्रुव सम घ्राण रत्न सी सोहे, जनु शशि की मुख करत बड़ाई।।
मेरे राम लला कब मिलिहौ कौशल्या भावना बनाई।
शरण प्राण अब चलन चहत है, जनु पिय की पिय से प्रियताई।।

अद्‌भुत हँसी, जो सबको हँसाती

श्रीमती मिताली सिंह, बिलासपुर

खिलखिलाती हँसी सभी का मन मोह लेती है। जैसे कोई संक्रमण तेजी से फैलता है, वैसी ही हँसता हुआ चेहरा देखकर सभी आकर्षित होते हैं। बच्चो ! जब हम किसी का खिलखिलाता-हँसता चेहरा देखते हैं, तो उस चेहरे के पीछे के कष्ट को समझ पाना बड़ा कठिन होता है ! आज हम एक ऐसे ही बच्चे के बारे में बात करेंगे। सोशल मीडिया में दिखने वाला वह बच्चा, जिसके हाथ में चाय का गिलास है और वह खिलखिलाकर हँसता है। उसकी हँसी कोई बनावटी नहीं थी। वह रातोंरात सभी सोशल नेटवर्किंग वेबसाइट पर छा गया। लोग उस वीडियो को एक दूसरे को भेजने लगे। किन्तु उस ठहाके के पीछे कितना मौन, गरीबी और संघर्ष था, इसे कोई नहीं जानता।

बच्चो ! हम बात कर रहे हैं तेलंगाना के अरुण कुमार की, जिसे आज पूरा विश्व लाफिंग ब्वॉय के नाम से जानता है। जो लड़का कल तक ट्रकों की सफाई करता था, आज इंटरनेट की दुनिया का बड़ा सितारा बन चुका है। अभी अभी इस लड़के ने एक ऐसा उदाहरण प्रस्तुत किया, जो दूसरों के लिये असम्भव है। कहानी आरम्भ होती है तेलंगाना के एक साधारण परिवार से। परिवार की आर्थिक स्थिति इतनी कमजोर थी कि अरुण जब मात्र चौथी कक्षा में था, तब उसके पिता की मृत्यु हो गई और उसके सिर पर परिवार का सारा बोझ आ गया। पढ़ाई छोड़कर ट्रक साफ करने के लिये हाथ में कपड़े पकड़ने पड़े। वह ट्रक का खलासी बन गया, जिसे हम लॉरी क्लीनर कहते हैं। एक लॉरी क्लीनर का जीवन आसान नहीं होता। हमारे जीवन में चमत्कार होते हैं और ये हमारे आस-पास विद्यमान लोगों से आते हैं।

अरुण के जीवन में परिवर्तन ट्रक का ड्राइवर नेहरू लाया। वह उसका मार्गदर्शक बना। बात उस दिन की है, जब नेहरू और अरुण ट्रक में माल लेकर कहीं जा रहे थे और रास्ते में चाय पीने के लिए किसी टपरी पर रुके। अरुण के

हाथ में चाय का कप था। बात करते हुए अरुण खिलखिलाकर हँस पड़ा। यह कोई साधारण

हँसी नहीं थी ! इस हँसी ने जीवन की सारी चिन्ता और थकावट पलभर में समाप्त कर दी। नेहरू ने अपनी मोबाइल निकाल कर अरुण की हँसी को अपने कैमरे में कैद कर लिया। उसके बाद उसने ये वीडियो सोशल मीडिया पर अपलोड कर दिया, फिर देखते-देखते ये वीडियो इंटरनेट पर वायरल हो गया और लोग उसकी हँसी को पसन्द करने लगे। रातों-रात एक ट्रक खलासी का चेहरा सबसे चर्चित चेहरा बन गया। हम देखते हैं कि इंटरनेट की दुनिया में प्रसिद्धि मिलने के बाद कुछ ही दिनों में ही लोग भूल जाते हैं। लेकिन अरुण के भाग्य में कुछ दूसरा ही लिखा था। इसका श्रेय उसके ट्रक ड्राइवर नेहरू को जाता है, जो उसके जीवन के मार्गदर्शक थे।

अरुण कहते हैं कि वीडियो वायरल होने पर जब मीडिया के लोग मुझे ढूँढने लगे, तब नेहरू ने सोचा यही सुअवसर है। ऐसा सुयोग जीवन में एक बार ही मिलता है। नेहरू ने अरुण को समझाया – ''यह प्रेम जो लोगों से मिल रहा है, वह हमेशा नहीं रहेगा। जीवन में सफल होने के लिए तुम्हें पीछे छूटी हुई पढ़ाई को वापस लाना होगा। नेहरू ने केवल सुझाव ही नहीं दिया, बल्कि पिता और गुरु के समान उसका दायित्व भी लिया। उसने अरुण की आर्थिक सहायता की। उसका उत्साह बढ़ाया और स्कूल में नाम लिखवाया। यह कार्य आसान नहीं था। चौथी से छूटी पढ़ाई के बाद उसे फिर से एक क्लासरूम (कक्षा) में बैठाना, कलम पकड़वाना, वह भी तब, जब उसे इंटरनेट पर प्रसिद्धि मिल चुकी हो। यह एक पहाड़ पर चढ़ने जैसे था। नेहरू के इस विश्वास को अरुण ने टूटने नहीं दिया। दिन में पढ़ाई करना और मिली प्रसिद्धि में संतुलन रखना कठिन था। यह बड़ा संघर्ष था।

किन्तु आपको जानकर बहुत प्रसन्नता होगी कि अरुण की यह मेहनत रंग लाई। उसने १०वीं बोर्ड की परीक्षा पास कर ली है। जो पढ़ाई वर्षों पहले छूट चुकी थी, आज उसे पूरा कर अरुण एक सर्टिफाइड मेट्रिक पास नौजवान बन चुका है। यह उपलब्धि करोड़ों व्यूज वाले वीडियो से बहुत बड़ी है। ये उसके जीवन की असली कमाई है।

बच्चो ! अरुण को इंटरनेट की दुनिया में काफी प्रसिद्धि मिली, पर वह आज भी इन चकाचौंध से दूर रहकर अपना कार्य करता है और जीवन में इस सफलता का श्रेय अपने मार्गदर्शन ट्रक ड्राइवर नेहरू को देता है, क्योंकि नेहरू ने उसके जीवन को बदल दिया। ○○○

त्रिमूर्ति-वन्दना

रामकुमार गौड़, वाराणसी

(यह अद्भुत वन्दना गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा रचित कवितावली के कवित्त छन्द – 'अवधेश के बालक चारि सदा, तुलसी मन मन्दिर में विहरैं' की तर्ज पर रचित है। इस भावप्रवण विलक्षण वन्दना की प्रथम पंक्ति में श्रीरामकृष्णदेव की गुणावली, द्वितीय पंक्ति में श्रीमाँ सारदा देवी की गुणावली, तृतीय पंक्ति में स्वामी विवेकानन्द की गुणावली और चतुर्थ पंक्ति में भक्त की अभिलाषा का वर्णन है। – सं.)

जो ईश्वर-अनुरागी संतों-भक्तों का संग सहास करैं ।
जो सदानन्दमय पति की सहज, अनुगता होकर वास करैं ।
जो चिर समाधि-सुख पाने का , गुरु से अनुरोध उदार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।१०६।।

जो शिष्यों के नैतिक-चरित्र का, गठन विशेष प्रकार करैं ।
जो मातृस्नेह से भक्तों-शिष्यों, को निष्पाप-उदार करैं ।
जो दुर्गा रूप, सारदा माँ को, संघजननि स्वीकार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।१०७।।

जो क्षमामूर्ति हाजरा-हृदय को, क्षमा विशेष प्रकार करैं ।
जो ग्राम्य वधू-सम सरलमना, उद्वेग शून्य आचार करैं ।
जो हिन्दू शास्त्र और संस्कृत, भाषा पर गर्व अपार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।१०८।।

जो पंचवटी में ध्यानरता, भैरवी-भोग स्वीकार करैं ।
जो दक्षिणेश्वर में लोकदृष्टि से, छिपकर चरित उदार करैं ।
जो गुरुवर-पद चिर-अनुगत हो, माँ काली को स्वीकार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।१०९।।

जो भक्त 'सुरेन्दर' को 'निज आधा', रसददार स्वीकार करैं ।
जो ठाकुर की महिला भक्तों से, आत्मीय व्यवहार करैं ।
जो भारत माता को राष्ट्रोन्नति, इष्टदेवि स्वीकार करैं ।।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।११०।।

जो प्राय: लाल किनारे की, सूती धोती परिधान करैं ।
जो ग्राम्यवधू-सम लज्जाशीला, दिव्य प्रेम का दान करैं ।
जो रामकृष्ण को युग अवतार-वरिष्ठ पुकार प्रचार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।१११।।

कंचन-काम-त्याग से मानव, को उत्कर्ष प्रदान करैं ।
जो त्यागीश्वर का मातृभाव, जीवन्त और गतिमान करैं ।
जो त्यागव्रती, चिरयुवा, त्याग, सेवामय अखिलाचार करैं।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।११२।।

जो जगदम्बा निर्भरा भक्ति, उपहार विशेष प्रदान करैं।
जो जगज्जननि शरणागतवत्सल, सकल वराभय-दान करैं ।
जो गुरुप्रदत्त दिव्योपहार का, वितरण और प्रसार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।११३।।

जो कालीपद को अभय-त्रिवाचा, देकर धन्य अपार करैं ।
जो क्षमामूर्ति सेवापराध को, क्षमा विशेष प्रकार करैं ।
जो परदुखकातर-अन्तर को, त्यागी-लक्षण स्वीकार करैं।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।११४।।

जो राम भक्तवर को सपने में, दीक्षा-मंत्र प्रदान करैं ।
जो त्यागी योगानन्द शिष्य को, दीक्षा प्रथम प्रदान करैं ।
जो सच्चे आध्यात्मिक विद्वानों, का सत्संग उदार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।११५।।

जो श्रीनिवास शंखारी का, मिष्टान्न-पुष्प स्वीकार करैं ।
जो गुरु समान भैरवी ब्राह्मणी, का आदर-सत्कार करैं ।
जो अजित सिंह की गुरु-पद सेवा, विनती को स्वीकार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।११६।।

जो सर्वप्रथम बचपन में ही, समाधि का अनुभव प्राप्त करैं ।
जो ज्वराक्रान्त हो माँ काली, दर्शन से मन को व्याप्त करैं ।
जो अन्दर-बाहर गुरुवर से, परिचालित जग-व्यवहार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।११७।।

जो विशालाक्षी मन्दिर-पथ, मन भावाविष्ट अपार करैं ।
जो भावसमाधि-दिव्य दर्शन का, अनुभव गुप्त प्रकार करैं ।
जो अन्दर भक्ति भाव रख बाहर, सेवा-कर्म उदार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।११८।।

जो मथुरनाथ को सर्वप्रथम, निज रसददार स्वीकार करैं ।
जो फलहारिणी कालिकापूजा, का पूजन स्वीकार करैं ।
जो माँ काली से भक्ति-विराग, प्रार्थना तीनों बार करैं।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।११९।।

जो हृदयराम, हाजरा आदि के, व्यंग्य-वचन स्वीकार करैं ।
जो मातृसुलभ कल्याण-वचन को, प्रकटित विविध प्रकार करैं ।
जो प्रथम दृष्टि में गुरु के, भाव-दरश को भ्रम स्वीकार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।१२०।।

गीतातत्त्व-चिन्तन

सोलहवाँ अध्याय (१६/१)

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व-चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ८वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के सितम्बर, २०१६ से नवम्बर, २०१७ अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है १६वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

दैवी सम्पत्तियाँ

अब हम गीता के सोलहवें अध्याय की चर्चा करेंगे, जिसको दैवासुरसम्पद्विभागयोग के नाम से पुकारा गया है। एक दैवी सम्पद है और दूसरी आसुरी सम्पद है। इन दोनों का विभाजन किया गया और इस विभाजन को योग से युक्त करके इस अध्याय का नाम रखा गया।

पहले हम यह समझने का प्रयास करेंगे कि दैवी सम्पद क्या है और आसुरी सम्पद क्या है। जैसा कि नाम से ही प्रकट है – दैवी वह है, जो देवताओं का हो, आध्यात्मिक हो, शुभ हो। इसके विपरीत जो हानिकारक हो, उसे हम आसुरी कहकर पुकारा करते हैं। इन दो प्रकार की सम्पत्तियों का वर्णन इस अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण के द्वारा किया गया है। एक सम्पन्नता है, जिसको उन्होंने दैवी सम्पन्नता के नाम से पुकारा और दूसरी है आसुरी सम्पन्नता। मनुष्य के भीतर गुण विद्यमान रहते हैं। कुछ गुण दैवी कहलाते हैं और कुछ गुण आसुरी कहे जाते हैं। इन्हीं आसुरी गुणों को हम दुर्गुण कहकर भी पुकारा करते हैं। पिछले अध्याय के साथ जोड़कर हम इस अध्याय का उद्देश्य जानने का प्रयत्न करेंगे।

पन्द्रहवें अध्याय के अन्तिम से पहले श्लोक में भगवान ने कहा था –

यो मामेवमसंमूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।

स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत ।। (१५.१९)

जो असंमूढ़ होकर मुझे जानता है, वही सब प्रकार से मुझे भजता है और मुझे प्राप्त हो जाता है। मूढ़ माने मोह से बँधा हुआ और असंमूढ़ वह जिसमें मोह का आवरण न हो। जो दैवी सम्पत्ति से विभूषित है, वह तो असंमूढ़ है और जो आसुरी सम्पत्ति से घिरा हुआ है, वह मूढ़ है। सोलहवें अध्याय का सम्बन्ध पन्द्रहवें अध्याय के अन्तिम श्लोक से भी है। जिसमें भगवान कहते हैं –

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ।

एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात् कृतकृत्यश्च भारत ।।

यह जो मैंने अत्यन्त गोपनीय शास्त्र कहा है, उसको जानकर मनुष्य को बुद्धिमान हो जाना चाहिए। इस शास्त्र को जानकर मनुष्य बुद्धिमान हो जाए, इसीलिए मैंने इसे कहा। वैसे तो मनुष्य अपने को बुद्धिमान मानता ही है, बुद्धियुक्त मानता है। अत: यहाँ भगवान का बुद्धि से क्या अभिप्राय है, यह समझने के लिए भी है सोलहवाँ अध्याय।

दैवी सम्पत्ति से युक्त मनुष्य ही बुद्धिमान

जिस व्यक्ति में बुद्धि की क्रिया विद्यमान है, वह बुद्धिमान तो है ही। प्राणी भी बुद्धि से युक्त होता है। पशुओं में भी हम बुद्धि का विकास देखते हैं, उन्हें बुद्धि का उपयोग करते देखते हैं। अत: यहाँ पर बुद्धिमान से तात्पर्य है, ऐसी बुद्धि से युक्त हो जाना, जिससे कि साधक कृतकृत्य हो जाए। यह

जो भगवान कहते हैं – एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्च भारत – इसका तात्पर्य यह है कि उस विशेष बुद्धि से युक्त होकर मनुष्य कृतार्थ हो जाता है। स्वाभाविक प्रश्न उठा कि विशेष बुद्धि से युक्त होने का उपाय क्या है? वही उपाय भगवान सोलहवें अध्याय में बताते हैं। कहते हैं – जो दैवी सम्पत्ति मैंने तुम्हारे समक्ष रखी, उससे जो अपने को युक्त कर लेता है, वह विशेष बुद्धि से युक्त व्यक्ति मेरी दृष्टि में बुद्धिमान पुरुष है। वह कृतार्थ हो जाता है, कृतकृत्य हो जाता है। हे भारत ! वह सब प्रकार से मेरा भजन करता है, ऐसा मेरा मत है। अब यह कहा गया कि विशेष बुद्धि से युक्त होने के लिए दैवी सम्पत्तियों को अपने भीतर ले आना चाहिए, तब साथ ही साथ यह भी बताया गया कि सम्पत्तियों में विवेक कैसे करना है। सम्पत्तियाँ तो सब हैं सामने, पर यह कैसे जानें कि कौन सी दैवी है और कौन सी आसुरी? भ्रमवश व्यक्ति आसुरी सम्पत्ति को ही दैवी सम्पत्ति समझकर उससे चिपट जा सकता है। जीवन में कई बार हम इस तरह गलत निर्णय के शिकार होते हैं। इसीलिए भगवान ने यहाँ पर दैवी सम्पत्ति और आसुरी सम्पत्ति के ठीक-ठीक लक्षण बताए।

इस अध्याय के प्रथम तीन श्लोकों में दैवी सम्पत्ति की बात कही गई है और शेष समस्त श्लोकों में आसुरी सम्पत्ति की चर्चा है। इसका कारण यह है कि भगवान दैवी सम्पत्ति की मुख्य बातें तो बता देते हैं, किन्तु जो बाधक तत्त्व हैं, जो हमें गड्ढे में गिरा दे सकते हैं, उनकी चर्चा भगवान विशेष रूप से करते हैं, ताकि उन बाधाओं से बचा जा सके। जैसे कि हमें किसी पहाड़ की चोटी पर पहुँचना हो और उसका रास्ता दुर्गम भी हो और हमें मालूम भी न हो, तो एक तरीका तो यह है कि सीधे-सीधे उस रास्ते का निर्देशन कर दिया जाए, परन्तु बताने वाला यदि हमारे प्रति कारुणिक है, तो मार्ग बताने के साथ-साथ हमें यह भी बताना चाहेगा कि उस मार्ग में बाधाएँ कौन-कौन सी हैं। हम यदि अपने लक्ष्य तक पहुँचना चाहते हैं, तो मार्ग के बाधक तत्त्वों की विशेष जानकारी अनिवार्य है। बाधक तत्त्वों की जानकारी देना तो भगवान के लिए आवश्यक था ही कि हमें बताएँ कि कैसे उन्हें हम अपने जीवन में स्थान दें और दैवी सम्पत्ति को अपने जीवन में उतारकर कृतार्थ हो जाएँ। साथ ही आसुरी सम्पत्ति विषयक स्पष्ट जानकारी देना भी बहुत आवश्यक था, जिससे मनुष्य दैवी सम्पत्ति समझकर कहीं आसुरी सम्पत्ति को न अपना ले। इसीलिए एक-एक दुर्गुण का भगवान ने विस्तार के साथ वर्णन किया है कि हम उसे भलीभाँति पहचान लें। यह उचित भी है। इससे पहले नौवें अध्याय के बारहवें और तेरहवें श्लोकों में भी दैवी और आसुरी सम्पत्ति की व्याख्या की गई थी।

मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः ।
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः ।।९/१२।।
महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः ।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ।।९/१३।।

मनुष्यों की तीन प्रकृति

भगवान कहते हैं – अर्जुन ! लोग तीन तरह की प्रकृति वाले होते हैं – १. राक्षसी २. आसुरी ३. दैवी। राक्षसी और आसुरी प्रकृति वाले लोग व्यर्थ की आशा अपने जीवन में पालकर रखते हैं। ऐसे कर्म वे करते हैं, जिनमें परिश्रम मात्र होता है और जिनका वस्तुतः कोई तात्पर्य नहीं रहता। ज्ञान का अर्जन वे करते भी हैं, तो उस ज्ञान का जिसका अपने जीवन में कोई प्रयोजन नहीं रहता। उनका चित्त सदा मोह से भ्रमित रहता है। परन्तु दूसरे जो दैवी प्रकृति के आश्रित हैं, दैवी प्रकृति का जिनके जीवन में वर्चस्व है, वे महात्मा हैं। वे मुझ अव्यय पुरुष को जानकर अनन्य चित्त से मेरा भजन करते हैं।

इन्हीं तीनों प्रकृतियों का विस्तार सोलहवें अध्याय में किया गया है। प्रश्न उठ सकता है कि यहाँ तो आसुरी और दैवी दो ही प्रकृतियाँ बताई गई हैं। इसके उत्तर में व्याख्याकारों का कहना है कि आसुरी और राक्षसी प्रकृतियों में कोई विशेष अन्तर नहीं है। आसुरी से तात्पर्य यह है कि जो इस संसार को ही सर्वस्व माने और ईश्वर को नहीं माने। जो अपने अहंकार पर आश्रित रहकर ही कर्म करता हो और ईश्वर की सत्ता को मानता ही न हो। जो यह माने कि विषयभोग ही जीवन की एकमात्र उपादेयता है। आसुरी प्रकृति वाला व्यक्ति भौतिकता प्रधान होता है। राक्षसी प्रकृति वाले व्यक्ति में आसुरी प्रकृति तो विद्यमान रहती ही है, उससे आगे भी दो कदम बढ़ा हुआ रहता है वह। आसुरी प्रवृत्ति वाले में सर्वत्र भौतिकता तो रहती है, पर मानवीय गुण भी रहते हैं। राक्षसी प्रवृत्ति वाला तो केवल अपने लिए जीता है। जो अनास्था से आक्रान्त हैं, ईश्वर पर विश्वास नहीं

रखते और केवल भौतिकवादी विचारधारा का पोषण करते हैं, उनके भी दो भेद होते हैं – एक तो केवल अपने लिए जीने वाले और दूसरे वे जो समाज की सुरक्षा का भी ध्यान रखते हैं। दूसरों का दुख-दर्द उन्हें भी सालता है। राक्षसी प्रवृत्ति वाले व्यक्तियों में हिंसाबुद्धि, ईर्ष्या, द्वेष का प्राचुर्य रहता है। दोनों प्रकृतियों में कुछ समता होने के कारण यहाँ सोलहवें अध्याय में राक्षसी प्रकृति में ही आसुरी प्रकृति का भाव समाहित हो गया।

एकमात्र पन्द्रहवें अध्याय को ही भगवान ने गुह्यतम की संज्ञा दी है और उसमें अर्जुन को बताया है कि जो व्यक्ति मोह से रहित होकर उनको जान लेता है, वह परम पद पा लेता है। अब प्रश्न उठता है कि असंमूढ़ हुआ कैसे जाए? इसी के उत्तर में कहते हैं कि जब दैवी सम्पत्ति से अपने को युक्त कर लेते हैं और आसुरी सम्पत्ति से दूर रहते हैं, तब असंमूढ़ बन जाते हैं। पन्द्रहवें अध्याय के ही अन्त में भगवान यह भी कहते हैं कि जो बुद्धिमान मनुष्य है, वह मुझे इस प्रकार से जानता है और कृतार्थ हो जाता है। बुद्धिमान से यहाँ उनका तात्पर्य उस विशेष बुद्धि से है, जिसके बल पर मनुष्य दैवी सम्पत्ति का वरण और आसुरी सम्पत्ति से दूर रहने का विवेक पाता है। इसीलिए यहाँ दोनों प्रकार की सम्पत्तियों की पहचान के लिए उनका भेद समझाने की आवश्यकता हुई। नौंवे अध्याय में की गई इन्हीं प्रकृतियों की चर्चा को भगवान यहाँ विस्तार देते हैं। तेरहवें अध्याय में भी क्षेत्रज्ञ के ज्ञान का अर्जन करने के लिए क्या-क्या पात्रता होनी चाहिए, उसके लिए भी भगवान ने कुछ गुणों का उल्लेख किया था। वहाँ दैवी सम्पत्ति के अन्तर्गत बताए गुणों में बहुत साम्य है। इसे पुनरुक्ति दोष न मान कर यह समझना चाहिए कि बारम्बार प्रसंग उठाकर भगवान उन गुणों को बार-बार हमारे समक्ष रख देते हैं कि हम उन्हें आत्मसात् कर लें। उन्हीं बातों को दुहराते रहने से वे हमारे भीतर पैठ जाती हैं। वस्तुत: गीता का उपदेश पन्द्रहवें अध्याय तक आकर समाप्त हो गया था, पर किसी विशेष बात पर जोर देने के लिए हम जो पुस्तक में अपेनडिक्स (appendix) जोड़ दिया करते हैं, उसी रूप में यह सोलहवाँ और सत्रहवाँ अध्याय जोड़ दिया गया है। उनमें कही गई बातों को विशेष महत्त्वपूर्ण जानकर जीवन में स्थान देना है, गीता का यह दृष्टिकोण है। **(क्रमश:)**

कविता

कृष्ण मेरे परम प्रियवर

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा, रायपुर

कृष्ण मेरे परम प्रियवर, तुम्हें यह जीवन समर्पित ।
ज्ञान-भक्ति-विराग दे दो, हृदय में दो प्रेम अतुलित ।।
मोह तम का नाश कर दो, हर क्रिया हो सत्य प्रेरित ।
ज्ञान का आलोक दे दो, भक्ति का हो भाव वर्धित ।।
तुम प्रभु हो दीनवैभव, तव कृपा से रहा वंचित ।
प्रेम की धारा बहाकर, करो मेरा हृदय सिंचित ।।
यही मेरा विनय तुमसे, रहूँ मैं तव चरन आश्रित ।
भक्ति का वरदान दे दो, कृष्ण हे प्रभु जगत्-वन्दित ।।

माँ की सन्तान को बल का कैसा अभाव? उनकी कृपा से आप में अनन्त शक्ति निहित है। श्रीरामकृष्ण कहा करते थे – 'यह तो मानी हुई माँ नहीं, सचमुच की अपनी माँ है।' 'माँ ब्रह्ममयी सर्वघटों में विराजमान हैं और उनके श्रीचरणों में गया, गंगा और काशी आदि तीर्थ निवास करते हैं।' ये ब्रह्ममयी ही हमारी माँ हैं, हमें किसका भय? हम भला क्यों बलहीन होंगे? जो अपने आपको दुर्बल है, वही दुर्बल हो जाता है। आप तो माँ की सन्तान हैं, आप क्यों दुर्बल होने लगे? आप महाशक्तिधर हैं। माँ की कृपा से आपके लिए असाध्य कुछ भी नहीं है। आपका 'मैं' 'मेरा' बोध जाते भला कितनी देरी लगेगी? माँ कृपा कर पल भर में चैतन्य कर सकती हैं और करती भी हैं।

वे सभी की अपनी माँ हैं, वे केवल मानी हुई माँ नहीं है। कोई भी बाढ़ में बहकर नहीं आया है। आप भला गाय-बकरी क्यों होंगे? आप तो माँ की सन्तान हैं। आप और मैं असल में माँ की सन्तान हैं। इसके अतिरिक्त और कुछ भी सत्य नहीं है। माँ की सन्तानों को यथार्थ में कोई भय नहीं। अतएव आपको और मुझे भी कोई भय नहीं। वे जैसे भी रखेंगी, हम वैसे ही रहेंगे, हम अपना भला-बुरा नहीं समझते, हममें क्षमता भी नहीं, जो समझ सकें।

– स्वामी तुरीयानन्द जी महाराज

स्वामी सर्वगतानन्द

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु हिन्दी अनुवाद स्वामी पद्माक्षानन्द ने किया है, जिसे धारावाहिक रूप से प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

१९८० ई. में मार्शफिल्ड रिट्रीट में श्रीकृष्ण जन्माष्टमी धूमधाम से मनाई गई। महाराज ने मुझे व्याख्यान तथा स्लाइड शो दिखाने के लिए कहा। सेंट लुईस से मैंने उनको लिखा था कि मैं एक स्लाइड ट्रे लेकर आऊँगा, किन्तु मुझे carousel projector चाहिए। जब मैंने उनसे projector के बारे में पूछा, तो उन्होंने कहा, भाई, मैं तकनीकी के विषय में नहीं जानता हूँ। मेरे लिए carousel (हिंडोला या चरखी) तथा cesserole (मिट्टी की हँड़िया) दोनों बराबर है। उनका शब्द विन्यास सुनकर हम सब हँसने लगे। उन्होंने कहा, 'मुझे, आर्चि और निना (एलेनोर) को फोन करने दो। उन लोगों के पास मशीन है। वे ही लेकर आयेंगे।' वे लोग मशीन लेकर आये तथा स्लाइड शो हुआ।

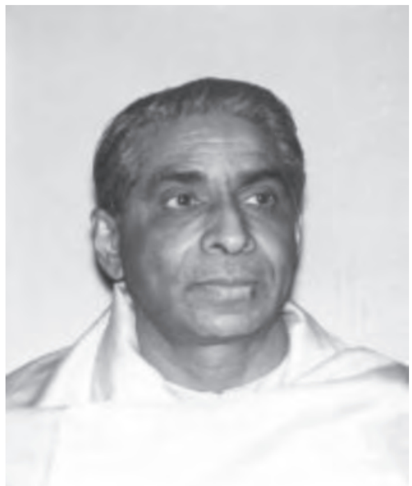

आर्चिबैल्ड और एलेनोर स्टार्क दोनों न्यू हैम्पशायर में रहते थे। वे दोनों स्वामी ऋतानन्द जी महाराज से दीक्षित थे। १९८७ ई. में वे दोनों मुझे एनिस्क्वाम, ग्रीनएकर तथा कैंप पर्सी देखने के लिए लेकर गए थे। निना ने अमेरिकी इतिहास में M.A पास किया था। उसने स्वामी विवेकानन्द के ऊपर The Gift Unopened नामक एक पुस्तक लिखी थी। उसकी इच्छा Ph.D उपाधि प्राप्त करने की थी। स्वामी सर्वगतानन्द के कानों में जब यह बात गयी, तो उन्होंने कहा, ''तुम Ph.D करना चाहती हो? मेरे साथ आओ।'' उन्होंने उसको रसोईघर में ले जाकर कहा, ''यहाँ मैं तुमको Ph.D की उपाधि दूँगा (Ph.D : Prepare Hindu Dishes).

स्वामी सर्वगतानन्द जी ने हार्वर्ड के एक प्रोफेसर को श्रीरामकृष्णवचनामृत की एक प्रति उपहार के रूप में दी। प्रोफेसर ने जब यह पढ़ा कि 'कामिनी और कांचन माया है' तो उसने पुस्तक पढ़ना बन्द कर दिया। बाद में जब सर्वगतानन्द जी ने यह सुना तब उन्होंने प्रोफेसर से कहा, ''श्रीरामकृष्णवचनामृत अध्ययन करने का यह तरीका सही नहीं है। श्रीरामकृष्ण की सभी शिक्षाएँ आपके लिए और मेरे लिए नहीं हैं। वे विश्व के सभी लोगों को शिक्षा देने के लिए आए थे। उनकी उन्हीं शिक्षाओं को अपने जीवन में उतारने का प्रयास कीजिए, जो आपके लिए उपयुक्त हैं। पुन: अध्ययन कीजिए।'' प्रोफेसर ने श्रीरामकृष्णवचनामृत का पुन: अध्ययन आरम्भ किया। पुस्तक को समाप्त करने के उपरान्त उसने स्वामी सर्वगतानन्द जी से कहा, ''मेरी ऐसी मान्यता है कि श्रीरामकृष्ण हमारे समाज की समस्या के समाधान हैं। मैं इस पुस्तक को बहुत पसन्द करता हूँ। हमारा समाज इन दो बातों से परिचालित होता है – dollar king and sex queen. श्रीरामकृष्ण की शिक्षाएँ इन दो विकट समस्याओं के सटीक समाधान हैं।

स्वामी सर्वगतानन्द से हम कई नई छोटी-छोटी कहानियाँ सुनते थे। १२ मार्च, १९९० को सेन्ट लुईस में यात्रा के दौरान उन्होंने कहा था, ''पोप ने महात्मा गाँधी से कहा कि वे उनकी सभा में अच्छे पोशाक पहनकर आएं लेकिन गाँधीजी ने इसे स्वीकार नहीं किया। जब जॉर्ज बर्नार्ड शॉ ने यह सुना तो उन्होंने कहा, ''पोप के दर्शन नहीं होने से महात्मा गाँधी ने कुछ भी नहीं खोया, किन्तु गाँधीजी के

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, कनखल, हरिद्वार, उत्तराखण्ड

दर्शन नहीं करने से पोप ने सत्य तथा प्रेमिक एक व्यक्ति के दर्शन का अवसर खो दिया।

''ईसाई लोग विश्वास करते हैं कि ईसा मसीह ही केवल परमात्मा से उत्पन्न पुत्र हैं। जॉन के गोस्पेल में केवल ऐसा लिखा गया है। अन्य गोस्पेल में ईसा प्रथम पुरुष के रूप में बोलते हैं। किन्तु जॉन के गोस्पेल में ईसा मसीह थर्ड पर्सन के रूप में बोलते हैं : 'परमात्मा ने उनको ही एकमात्र पुत्र के रूप में भेजा है।' क्या परमात्मा इतने शक्तिहीन हैं कि वे अन्य पुत्र उत्पन्न नहीं कर सकते?

''ईसाई धर्म गर्भ तथा कब्र में है अर्थात् ईसाई लोग ईसा मसीह के वर्जिन बर्थ तथा उनके कब्र से पुनरुज्जीवन में विश्वास करते हैं।

सीजर रोम के सम्राट थे। एक बार उसने एक ईसाई को एक शेर के सामने छोड़ दिया किन्तु शेर ने ईसाई पर हमला नहीं किया। सीजर ने उससे पूछा, क्या तुम जादू जानते हो? क्या तुमने शेर को सम्मोहित किया है?

ईसाई ने कहा, 'नहीं, मैं किसी को क्षति नहीं पहुँचाता हूँ।''

''क्या तुम युद्ध कर सकते हो?''

''नहीं?''

''तब तो तुम कायर हो।''

''नहीं।''

''तब तुम हमारे सैनिक के साथ लड़ाई करो।''

लड़ाई आरम्भ हुई और भक्त ईसाई ने रोमन सैनिक को पराजित कर दिया। सीजर ने देखा कि ईसाई भक्त ईमानदार तथा शक्तिशाली था। तब उसने रोमनों से कहा, 'चलो, हम सभी ईसाई बन जाएं।'

''तीन सौ बिशप ने पोप को लिखा, ''हम लोग पूर्वी ध्यान पद्धति, योग तथा एकाग्रता का अनुसरण नहीं करेंगे। हम सभी अपनी ध्यानपूर्ण प्रार्थना का अनुसरण करेंगे। ईसा मसीह ने कहा है, ''द्वार बन्द करो, कमरे में जाकर प्रार्थना करो।'' ईसा मसीह स्वयं जनमानस का त्याग करके निर्जन में प्रार्थना करते थे। यह सामूहिक प्रार्थना नहीं थी, वास्तव में वह ध्यान था। 'Medi' का अर्थ मापना है। हम अपने मन को ध्यान के समय मापते हैं।

महाराज MIT (Massachusetts Institute of Technology) में परामर्शदाता थे। वहाँ के विभाग के

सदस्य महाराज का विशेष सम्मान करते थे। क्योंकि वे अन्य सभी धार्मिक सम्प्रदायों से पृथक् व्यक्ति थे। १९४५ में द्वितीय विश्व युद्ध में हिरोशिमा तथा नागासाकी के ऊपर बमबारी के उपरान्त बहुत से वैज्ञानिकों को ऐसा लगा कि हम लोग तो ध्वंस के मार्ग पर चल रहे हैं। शिक्षा से धर्म को हटा देने से भयावह होगा, मनुष्य अनैतिक, चरित्रहीन तथा स्वार्थी हो जायेगा। विज्ञान तथा तकनीकि को मानवता से जुड़ा होना चाहिए। हमारे वर्तमान युग की शिक्षा का उद्देश्य तीन P है अर्थात् profit, pleasure and power. १९५५ में MIT में एक प्रार्थनागृह का आरम्भ हुआ।

रामकृष्ण वेदान्त सोसाएटी, बोस्टन, अमेरिका

दीपक जैसे बिना तेल के नहीं जल सकता, उसी प्रकार मनुष्य भी बिना ईश्वर के नहीं जी सकता। ईश्वर सत्, चित्त और आनन्द स्वरूप है। वह एक अद्वितीय सच्चिदानन्द या ब्रह्म है।

स्वामी सर्वगतानन्द जी वास्तव में एक प्रेमिक संन्यासी थे। मैं मार्शफिल्ड रिट्रीट में महाराज के साथ था। उनका शरीर आन्ध्रप्रदेश का था। वे अत्यधिक तीखा भोजन करते थे। दो-तीन दिन तक तीखा, मसालेदार भोजन करने के बाद मैंने महाराज से कहा, ''महाराज, मिर्चा डालने के पहले यदि मेरे लिए अलग से निकाल दिया जाये, तो वह बहुत अच्छा होगा।'' वे समझ गए और कहा, ''भाई, तुमने पहले क्यों नहीं बताया? क्या तुम जानते नहीं कि पूर्वजन्म में मैं नरक का द्वारपाल था?'' मैं हँसने लगा। मैं वहाँ जितने दिन तक था, वे बिना मिर्च के ही भोजन बनाते थे।

एक दिन सर्वगतानन्दजी ने कहा, ''देखो, हमारा संघ पारस्परिक प्रेम तथा आदर के ऊपर प्रतिष्ठित है। स्वामी विवेकानन्द ने नियमावली में ऐसा ही लिखा है। एक बार एक साधु जब कनखल सेवाश्रम से चला गया, तब स्वामी कल्याणानन्द जी ने बहुत उदास होते हुए कहा था, 'वह कहाँ चला गया?' हमें सभी को अपने प्रेम से बाँध कर रखना होगा। हमें अदोषदर्शी होना होगा।''

सर्वगतानन्दजी ने अति सुन्दरता से कहा, ''प्रतिक्रिया, क्रोध, विरोध मत करो लेकिन प्रकट करो।'' उन्होंने महात्मा गाँधी के तीन बन्दर का उदाहरण देते हुए कहा, ''बुरा मत देखो, बुरा मत बोलो तथा बुरा मत सुनो। इस विश्व में अधिकांश मनुष्य माया द्वारा मोहित हो गये हैं। आदि शंकराचार्य ने सभी को माया के सम्मोहन से मुक्त करने हेतु निर्वाणषट्कम् में विस्तृत रूप से वर्णन किया है।'' तत्पश्चात् वे 'मनोबुद्ध्यहंकारचित्तानि नाहं' इत्यादि की आवृत्ति करने लगे।

स्वामी सर्वगतानन्द ने कई वर्षों तक MIT के छात्रों का मार्गदर्शन किया था। १९९७-१९९८ में उन्होंने स्वामी विवेकानन्द के चार योग पर वक्तृता दी थी, जो उनके अद्वितीय चिन्तन का प्रमाण है। मैं उन वक्तृताओं में से कुछ अंशों का यहाँ पर उल्लेख कर रहा हूँ :

''हमारा कार्य कर्म-सिद्धान्त पर आधारित है, जो यथार्थ में ठीक है। जैसा तुम बोओगे, वैसा काटोगे। यह शास्त्र प्रमाणित है। यदि तुम अच्छे कर्म करते हो, तो उसका फल अच्छा मिलेगा। उसी प्रकार यदि तुम गलत कर्म करते हो, तो उसका फल बुरा मिलेगा। तुम किसी को प्रेम करते हो, तो बदले में तुमको भी प्रेम मिलेगा। तुम किसी से घृणा करते हैं, तो उसके बदले तुमको घृणा मिलेगी। हम सभी अपने-अपने कर्म के भोक्ता हैं। हम इसको अस्वीकार नहीं कर सकते। लगभग ३०० वर्ष पूर्व उपनिवेशवादी अमेरिका में आये। उन लोगों ने कठोर परिश्रम किया और देश का

निर्माण किया। उसका परिणाम आज देखने को मिल रहा है। यह उनका कर्म है। तुम जो कुछ भी करते हो, तो वह तुम्हारा हो जाता है। (Lecture at MIT, 1997, Karma Yoga)

''सभी धर्म यह घोषित करते हैं कि ईश्वर प्रेमस्वरूप हैं। चेतना तथा ज्ञान में ईश्वर विद्यमान हैं लेकिन प्रेम का अनुभव होना चाहिए। भगवद्गीता तो यहाँ तक कहती है कि हम जिस प्रेम का अनुभव कर रहे हैं, वह प्रेम भी अपना नहीं है, वह ईश्वर का ही प्रेम है। हम उनके एक अंश हैं तथा उसकी चिनगारी हममें प्रकाशित होती है। उनका प्रकाश ही हमें उस प्रेम का अनुभव करने में सहायता करता है। हम सबमें जो प्रेम है, वह किसी और का नहीं, बल्कि भगवान का ही प्रेम है, जो हमारे मन तथा विचारों की अवस्था पर निर्भर करती है। हम सभी में वह चिनगारी विद्यमान है, किन्तु हमें यह पता नहीं है कि उसके साथ हम क्या करें। बहुत बार हम इसका व्यवहार अपने तरीके से करते हैं। यह ऐसा ही है कि जैसे सूर्य से रोशनी पाकर हम गर्मी का अनुभव करते हैं। हमारे भीतर का प्रेम ईश्वर से आता है तथा वह हमें सम्पूर्ण रूप से परिपूर्ण कर देता है। (Lecture at MIT, 1997, Bhakti Yoga)

''भगवान क्या हैं? बहुत लोग सोचते हैं कि भगवान स्वर्ग में बैठे हुए हैं। ऐसा नहीं है। मैं आपको GOD की एक नई परिभाषा देता हूँ। G-O-D is "Ground of Our Dwelling." GOD/ ईश्वर अर्थात् हमारे जीने का आधार। हम सबके भीतर ईश्वर हैं। हमें सभी को प्रेम करना सीखना होगा। इसका मतलब यह नहीं है कि आप अपने व्यक्तिगत प्रेम को अस्वीकार कर दें। सब कुछ स्वीकार्य है। (Lecture at MIT, 1997, Bhakti Yoga)

''राजयोग में सभी प्रक्रिया आन्तरिक है, बाहरी नहीं है। हमारी सफलता हमारे मन के नियंत्रण पर निर्भर करती है। मानवीय मन की अतुलनीय शक्ति होती है। इस पथ में हमें सिद्धि की प्राप्ति इस मन को मजबूत बनाने, पवित्र एवं विस्तृत करने पर निर्भर करती है। श्रीरामकृष्ण कहा करते थे, 'मन से बद्ध, मन से ही मुक्त'। मन नरक से स्वर्ग का निर्माण कर सकता है और यही मन स्वर्ग में भी नरक की रचना कर सकता है। हमें यह जानना होगा कि बोध तथा अनुभव के इस साधन को वश में और मजबूत कैसे करें। यदि मैं स्वर्गीय भूभाग को देखना चाहता हूँ, तो मुझे अपने टेलीस्कोप को साफ-सुथरा तथा सुव्यवस्थित रखना होगा। उसी प्रकार मेरा मन मेरी आत्मा को देखने का साधन है। संघर्षशील मन उपकरण है। प्रकाशित मन लक्ष्य है। (Lecture at MIT, 1998, Raja Yoga)

''ध्यान हमें गहराई में पहुँचने में सहायता करता है। यह हमें वस्तुओं को जानने एवं परिस्थितियों का मूल्यांकन करने में सहायक होता है। आइंस्टीन ने एक बार कहा था, 'हम वैज्ञानिकों को भी ध्यान करना चाहिए!' जब हम अध्ययन करते तथा तथ्यों का संग्रह करके सचेतन तथा सुसंगत रूप से उनको व्यवस्थापन करते हैं, तो हमें डाटा पर ध्यान करना होता है। चिन्तन तथा ध्यान के द्वारा हम समझ तथा गहराई प्राप्त करते हैं। (Lecture at MIT, 1998, Raja Yoga)

बोस्टन तथा प्रोविडेन्स केन्द्र के अनेक व्याख्यानों में सर्वगतानन्द जी ने कहा था, ''जीवन का लक्ष्य है, 'प्रेम और सेवा करना।' ''

एक बार महाराज ने मुझे आदेश दिया, ''भाई, ब्रह्मसूत्र के जैसा 'रामकृष्णसूत्र' तैयार करना होगा। तुम रामकृष्णवचनामृत तथा रामकृष्णलीलाप्रसंग से मेरे लिए रामकृष्णसूत्र तैयार कर दो। इन सूत्रों के ऊपर भविष्य में भाष्य तथा टीका-टिप्पणी तैयार होगी। महेन्द्रनाथ गुप्त 'श्रीम' कहते थे कि श्रीरामकृष्ण

देव का प्रत्येक शब्द ही मन्त्र है। उनके आदेशानुसार मैंने कई सूत्रों का चयन करके महाराज को भेजा था :

१. कामिनी-कांचन ही माया है।

२. सत्य ही कलियुग की तपस्या है।

३. लज्जा, घृणा तथा भय के रहते ईश्वर-प्राप्ति नहीं होती।

४. भागवत-भक्त-भगवान; तीनों एक हैं।

५. मन धोबी के यहाँ का कपड़ा है, जिस रंग में रंगोगे, वही रंग उसपर चढ़ेगा।

६. ईश्वर कल्पतरु हैं।

७. 'मैं' मरा कि जंजाल मिटा।

८. मैं यन्त्र हूँ, तुम यन्त्री हो।

९. अनन्त मत, अनन्त पथ।

१०. जितने मत, उतने पथ।

११. अद्वैत ज्ञान आँचल में बाँधकर, जो इच्छा हो, वही करो।

१२. भक्त होना, मूर्ख नहीं होना।

१३. शुद्ध मन, शुद्ध बुद्धि तथा शुद्ध आत्मा एक है।

१४. सभी सियारों की एक ही बोली होती है।

१५. योगी का पैर बेताल नहीं पड़ता।

१६. जैसा भाव, वैसा लाभ।

१७. ईश्वर के ऊपर निर्भर रहो, मनुष्य के ऊपर नहीं। मनुष्य असहाय प्राणी है।

१८. जिसका मन होश में है, वही मनुष्य है।

१९. ब्रह्म और शक्ति अभेद है।

२०. ब्रह्म ही वस्तु है और बाकी सब अवस्तु।

२१. व्याकुलता होते ही समझो कि अरुणोदय हुआ।

२२. वेदान्त का सार हुआ : ब्रह्म सत्य, जगत् मिथ्या।

२३. गीता का सार हुआ, त्यागी, त्यागी।

२४. विषयासक्त मन भीगी दियासलाई है।

२५. विश्वास से कृष्ण मिलते हैं, तर्क से बहुत दूर हैं।

२६. (दिखावटी) वात्सल्य से हीन-वासना उत्पन्न होती है।

२७. असार भाग छोड़कर सार वस्तु ग्रहण करो।

२८. निराकार भी सत्य है और साकार भी सत्य है।

२९. जिनकी नित्यता है, उनकी ही लीला है।

३०. ध्यान करना मन में, वन में और कोने में।

३१. मैं नहीं, मैं नहीं, तुम ही, तुम ही।

३२. तीन आकर्षण एकत्र होने पर ईश्वर-प्राप्ति होती है, पति पर सती का, बच्चे पर माँ का तथा विषय पर विषयी का।

३३. डुबकी लगाओ।

३४. आगे बढ़ो।

३५. रुपया मिट्टी, मिट्टी रुपया।

३६. सच्चिदानन्द ही गुरु हैं।

३७. ईश्वर ही वस्तु हैं, बाकी सब अवस्तु है।

३८. ईश्वर को तुष्ट करो, सभी तुष्ट हो जायेंगे।

३९. ईश्वर ही सब कुछ हुए हैं, फिर भी मनुष्य में उनका अधिक प्रकाश है।

४०. श, ष, स अर्थात् सहन करो, सहन करो, सहन करो।

४१. ग्रन्थ ही ग्रन्थि है।

४२. पाप और पारा छिपाये नहीं छिपता।

४३. भाव के घर में चोरी मत करो।

४४. ब्रह्म कभी जूठे नहीं हुए हैं।

४५. ईश्वर की इति नहीं की जा सकती, जो करता है, उसकी हीन बुद्धि है।

४६. मन और मुख एक करना ही धर्म है।

स्वामी सर्वगतानन्द जी यह सूची प्राप्त करके अतीव आनन्दित हुए। ठाकुर के इन सब सूत्रों का चिन्तन करने से मन ऊर्ध्वमुखी होता है।

बंगला भाषा में यह कहावत है कि अस्सी की उम्र होने पर मनुष्य को संसार से विदाई लेने की तैयारी कर लेनी चाहिए। स्वामी सर्वगतानन्द जी महाराज विनोद करते हुए कहते थे, "देखो भाई, अस्सी वर्ष के उम्र के सभी संन्यासियों के पास एक दवा होनी चाहिए। जिसको खाने से उनकी तत्काल मृत्यु हो जाए।" सर्वगतानन्द जी ९७ वर्ष तक इस धराधाम पर थे, जिसमें से ७० वर्ष उन्होंने मानवता की सेवा में व्यतीत किए थे। रामकृष्ण संघ के संन्यासियों में सबसे अधिक ५५ वर्ष तक वे अमेरिका में सेवारत थे। स्वामी सर्वगतानन्द जी महाराज का जीवन धन्य और सार्थक था। **(क्रमशः)**

मध्यप्रदेश-छत्तीसगढ़ रामकृष्ण-विवेकानन्द भाव-प्रचार परिषद का अर्धवार्षिक सम्मेलन सम्पन्न हुआ

११ और १२ मार्च, २०२६ को मध्यप्रदेश-छत्तीसगढ़ रामकृष्ण-विवेकानन्द भावप्रचार परिषद का अर्धवार्षिक सम्मेलन रामकृष्ण सेवा मंडल, भिलाई और सारदा सेवा समिति, भिलाई के संयुक्त तत्त्वावधान में आयोजित किया गया। कार्यक्रम प्रातः ९.३० बजे प्रारम्भ हुआ। सर्वप्रथम माँ सारदा पब्लिक स्कूल, भिलाई में स्वामी विवेकानन्द जी और श्रीमाँ सारदा की मूर्ति पर संन्यासियों द्वारा पुष्प-माल्यार्पण किया गया। तत्पश्चात् भावप्रचार परिषद के अध्यक्ष श्रीमत् स्वामी व्याप्तानन्द जी महाराज के द्वारा ध्वजारोहण और समवेत स्वदेश मन्त्र का पाठ हुआ। सभी संन्यासियों ने दीप-प्रज्वलन और मंचस्थ श्रीठाकुर, श्रीमाँ और श्रीस्वामीजी की प्रतिमा पर पुष्पार्पण किया। तत्पश्चात् स्वामी तन्मयानन्द के साथ सबने समवेत स्वर में संकल्प मन्त्र का पाठ किया। तदनन्तर पिछली सभा का संक्षिप्त प्रतिवेदन पाठ हुआ। समागत स्वशासी केन्द्रों के प्रतिनिधियों ने अपने आश्रम के छह माह की रिपोर्ट पढ़ी। परिषद के अध्यक्ष स्वामी व्याप्तानन्द जी ने सदस्य आश्रमों की समस्याओं का निराकरण किया। सभा में परिषद् के उपाध्यक्ष स्वामी नित्यज्ञानानन्द, स्वामी प्रपत्त्यानन्द, सहित स्वामी अनुभवानन्द, स्वामी योगस्थानन्द, स्वामी कृष्णामृतानन्द, स्वामी वीरेशानन्द और स्वामी तन्मयानन्द और बेलूड़ मठ के प्रतिनिधि पर्यवेक्षक रामकृष्ण मिशन आश्रम राँची के सचिव स्वामी भवेशानन्द उपस्थित थे। इसमें कुल १२ केन्द्रों के ३६ प्रतिनिधि उपस्थित थे। १२ अप्रैल, २०२६ को भक्त-सम्मेलन का आयोजन किया गया, जिसे संन्यासियों ने सम्बोधित किया। लगभग १३० भक्तों ने भाग लिया।

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर द्वारा ग्रीष्मकाल में यात्रियों को मट्ठा वितरण किया गया

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर द्वारा छत्तीसगढ़ में गर्मी के लिये विख्यात नवतपा में यात्रियों

को मट्ठा वितरण किया गया। मट्ठा-वितरण का कार्य २१ मई, २०२६ से २ जून, २०२६ तक किया गया, जिससे लगभग ४०२० लोग लाभान्वित हुये। इस तपती धूप में वितरण की सेवा में आश्रम के सभी संन्यासियों, भक्तों और आश्रम छात्रावास के बच्चों ने बहुत सहायता की।

रामकृष्ण मिशन का नया केन्द्र – रामकृष्ण मिशन, श्रीरामकृष्ण विवेकानन्द रोड, गाँधी नगर, बल्लारी, कर्नाटक – ५८३ १०३

बेलूड़ मठ में १ मई, २०२६ को रामकृष्ण मिशन का स्थापनोत्सव आयोजित हुआ। रामकृष्ण मठ और मिशन के परमाध्यक्ष परम पूज्यपाद स्वामी गौतमानन्द जी महाराज ने आशीर्वचन दिए। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज स्वामी गिरीशानन्द जी महाराज और अन्य संन्यासियों, भक्तों सहित लगभग ४०० लोग सभा में उपस्थित थे।

छात्रों हेतु ग्रीष्मकालीन शिविर का आयोजन

रामकृष्ण मिशन के विभिन्न केन्द्रों द्वारा छात्रों के लिए निम्नलिखित ग्रीष्मकालीन शिविर लगाये गए, जिसमें छात्रों को वेद-पाठ, भजन, योगासन और आदर्शोन्मुखी शिक्षा प्रदान की गई। केन्द्र का नाम और छात्र संख्या इस प्रकार है – बल्लारी ६० छात्र, बसवनगुडी, बेंगलुरु १६६, दावणगेरे ६०, हलासुरु ९५, हैदराबाद १३००, इन्दौर १००, जलपाइगुड़ी ४८, कडपा ११५, कोची ४०, लिमड़ी ३२५, मनसाद्वीप ८०, मैसूर ६०, पोरबन्दर १३०, राजमहेन्द्रवरम १७४, राजकोट २२५, तिरुपति ५७.